ऋग्वेद

ओ३म्

यजुर्वेद

पवमान

(मासिक)

वर्ष : 34 कार्तिक-पौष वि0स0 2079 अंक : 11 नवम्बर 2022

मुद्रक: सरस्वती प्रेस, देहरादून वजन: 50 ग्राम

नेता जी सुभाष चन्द्र बोस

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद

शरदुत्सव (12 से 16 अक्टूबर, 2022) में आप सादर आमंत्रित हैं।

अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

karix
connect • interact

Transforming the way businesses communicate & interact with their customers

Karix empowers organisations to enable smarter, relevant, and personalised conversations with their customers and create seamless customer experiences, across the globe. Purpose-built for enterprises, Karix offers a rich suite of communication channels with superior security standards, unmatched customer support and a reliable cloud-based platform to support all communication needs.

21+
years of industry experience with a stronghold in all major industries

2,000+
Enterprise customers

100+ BN
Omni-channel messages processed annually

24x7
Support provided by over 200 engineers

10,000+
Business processes supported

CUSTOMER ENGAGEMENT SOLUTIONS SUITE

- WhatsApp
- A2P Messaging
- Email
- RCS
- Voice
- Marketing Automation
- Campaign Automation
- Chatbots
- Live Agent Chat

WHY DO FORTUNE 1000 BUSINESSES PREFER KARIX?

- Best in class connectivity
- High available systems
- Hybrid cloud infrastructure
- Deep domain understanding

For more details, visit us at www.karix.com or write to us at marketing@karix.com

ओ३म्

पवमान

वर्ष–34 अंक–11

कार्तिक–पौष 2079 विक्रमी नवम्बर 2022

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,123 दयानन्दाब्द : 198

★

–: संरक्षक :–

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

मो. : 9410102568

★

–: अध्यक्ष :–

श्री विजय कुमार

मो. : 9837444469

★

–: सचिव :–

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

–: आद्य सम्पादक :–

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

–: मुख्य सम्पादक :–

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

–: सहायक सम्पादक :–

अवैतनिक

मनमोहन कुमार आर्य–

मो. : 9412985121

★

–: कार्यालय :–

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून–248008

दूरभाष : 0135–2787001

मोबाईल : 7895978734 (श्री चन्दन सिंह)

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ. कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	आचार्य डॉ. रामनाथ वेदालंकार	3
सत्यार्थप्रकाश के अष्टम सम्मुल्लास में...	कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री	4
सत्यार्थप्रकाश अविद्या का विनाषक एवं विद्या...	मनमोहन कुमार आय	7
ओ३म् की व्याख्या	डॉ. महेश कुमार शर्मा	10
हमारा वर्तमान जन्म हमारे पूर्वजन्म का...	मनमोहन कुमार आर्य	14
रोग एवं उनके आयुर्वेदिक उपचार...	पं. श्री लालबिहारी जी मिश्र	17
नमस्ते	इन्द्रजीत देव, हरियाणा	19
प्रार्थना	वेदरत्न पं. रामप्रसाद वेदालंकार	20
किसकी नकल करनी चाहिए व किसकी...	सीताराम गुप्ता	21
कवि की ओर से	कवि वीरेन्द्र कुमार राजपूत	23
जन्मदिन पर यज्ञ करें	स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक	24
जीवन की उन्नति के लिये वेद और...	मनमोहन कुमार आर्य	25
उचित दण्ड व्यवस्था से ही शान्ति सम्भव	स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक	27
सामान्य ज्ञान विज्ञान		30
भारत के महान दानी घनश्याम दास...		31
धन की गति		31
सद्विचार		32

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. "वैदिक साधन आश्रम"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. "पवमान"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
3. 'तपोवन विद्या निकेतन"	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1.	कलर्ड फुल पेज	रु. 5000/– प्रति माह
2.	ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज	रु. 2000/– प्रति माह
3.	ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज	रु. 1000/– प्रति माह

सदस्यों के लिए पवमान पत्रिका के रेट्स

1.	वार्षिक मूल्य	रु. 200/– वार्षिक
2.	15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य	रु. 2000/–

नोटः पवमान पत्रिका फुटकर विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं है।

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

सत्यार्थप्रकाश है एक कालजयी ग्रन्थ

हम आज सत्यार्थप्रकाश नामक कालजयी ग्रन्थ के विषय में विचार कर रहे हैं। यह युगान्तरकारी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने वाले की जीवनधारा बदल जाती है, चिन्तनधारा और तर्कशैली में परिवर्तन हो जाता है। इस ग्रन्थ के पाठक के चिन्तन, मनन और आचरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। यह मानव-मन्तव्य का अनुपम, अद्वितीय ग्रन्थ है। विधि-निषेध, कर्तव्य अकर्तव्य का बोध कराने वाला दूसरा कोई अन्य ग्रन्थ इसके समकक्ष दिखाई नहीं पड़ता है। विश्व की प्रायः सभी प्रमुख धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में तर्क बुद्धिसंगत विचार इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भूमिका में इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन इस प्रकार वर्णित किया है-मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेवाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है, परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है।

सत्यार्थप्रकाश के बहुआयामी सिद्धान्त युगान्तरकारी तो अवश्य हैं, अपितु अविद्या और मलिनता से आक्रान्त लोगों की मनःस्थिति के विरुद्ध भी हैं। अतः इस पर सामाजिक और राजनीतिक प्रहार ही नहीं हुए, न्यायालयों में मुकदमे भी चले, किन्तु ज्यों-ज्यों विरोध बढ़ता गया, इसकी गौरव गरिमा प्रकाश में आने लगी। समाज सुधारक, देशोद्धारक ही नहीं, अपितु क्रान्तिकारियों के लिए भी यह प्रेरणा का श्रोत रहा है। इस ग्रन्थ की उपादेयता और लोकप्रियता क्रमशः बढ़ती गयी है और अबतक देश-विदेशों की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इस ग्रन्थ के प्रणयन का उद्देश्य चिरविस्मृत आर्ष परम्पराओं का उद्धार कर उन्हें पुनः प्रतिष्ठापित करना है। इसमें विषय-बाहुल्य है। इसमें विद्या है, वेदों और ऋषियों की शिक्षा है और है षड्दर्शनों का अभिनव दृष्टिकोण है। यह ग्रन्थ न केवल हम आर्यों अपितु सभी मनुष्यों के द्वारा पठनीय है। यह सत्यार्थप्रकाश विशेषांक सुधी पाठकों की सेवामें समर्पित है।

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वेदामृत

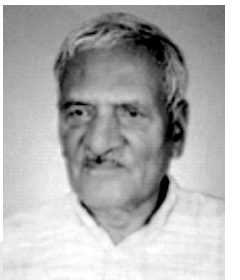

'प्रभु का सखा विफल नहीं होता'

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमꣳश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिशामा वयं तव।।**ऋग्वेद 1.94.2**

ऋषिः कुत्सः आंगिरसः। देवता अग्निः। छन्दः त्रिश्टुप्।।

(यस्मै) जिसके लिए (त्वं) तू (आयजसे) [अपनी रक्षा] प्रदान करता है (सः) वह (साधति) सफल होता है, (अनर्वा) अहिंसित या अपराश्रित होता हुआ (क्षेति) निवास करता है, (सुवीर्यं) सुवीर्य को (दधते) धारण करता है। (सः) वह (तूताव) बढ़ता है, (एनं) इसे (अंहतिः) पाप–भावना और दरिद्रता (न) नहीं (अश्नोति) प्राप्त होती है। (अग्ने) हे तेजोमय अग्रणी प्रभु! (वयं) हम (तव) तेरे (सख्ये) सखित्व में (मा) मत (रिषाम) हिंसित होवें।

हे अग्ने! हे तेजोमय अग्रणी प्रभु! तुम्हारी शरण और तुम्हारी रक्षा अतिशय महान् है। बड़े–से–बड़े सांसारिक सम्राटों की रक्षा तुम्हारी रक्षा के सम्मुख निस्तेज है। जिसे तुम्हारी रक्षा प्राप्त हो जाती है, वह निश्चित ही जीवन में सफल होता है। कठिनाईयाँ या बाधाएं उसके मार्ग में रुकावट नहीं डाल पातीं। वह 'अनर्वा' बना रहता है, किसी भी आन्तरिक या बाह्यशत्रु से हिंसित नहीं होता। न काम, क्रोध आदि षड्रिपु उसके जीवन को नष्ट कर पाते हैं, न ही चोर, वंचक, आततायी, उपद्रवी मानव–रिपु उसे क्षति पहुंचा पाते हैं। तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके उसे किसी अन्य का आश्रय पकड़ने की भी आवश्यकता नहीं रहती। अपनी रक्षा की डोर तुम्हें सौंपकर वह स्वावलम्बी होकर निवास करता है। तुम जैसे रक्षक का भरोसा होने पर उसके अन्दर 'सुवीर्य' जाग उठता है, वह उत्कृष्ट आत्म–बल और उत्कृष्ट शारीरिक बल से अनुप्राणित हो जाता है। फिर तो तुम्हें सहारा देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, वह स्वयं अपनी रक्षा में समर्थ हो जाता है। वह बढ़ता जाता है, अगले से अगले उत्कर्ष के सोपान पर चढ़ता जाता है। वह धन से बढ़ता है, श्री से बढ़ता है, विद्या से बढ़ता है, सद्गुणों से बढ़ता है, साम्राज्य से बढ़ता है। वह 'अंहति' के वश में नहीं होता। हिंसार्थक हन् धातु से बननेवाले अंहस्, अंहु, अंहति शब्द पाप और दरिद्रता के वाचक हैं। प्रभु के सखा को पाप–पीड़ा और दरिद्रता नहीं घेरती। वह मानसिक और शरीरिक पापों में निमग्न नहीं होता। साथ ही न वह धन से दरिद्र होता है, न गुण से दरिद्र, न सुख–स्वास्थ्य से दरिद्र। सचमुच अग्निदेव की रक्षा को पाकर मनुष्य तर जाता है।

हे ज्योतिर्मय प्रभु! हमें भी तुम अपनी शरण और अपनी रक्षा प्राप्त कराओ, हमें भी अपने सख्य में ले लो, जिससे जीवन में हम किसी से हिंसित न हों, अपितु अजित, अहत और अक्षत रहते हुए भूमण्डल पर राज्य करें।

आचार्य डॉ0 रामनाथ वेदालंकार
की पुस्तक वेद-मंजरी से साभार

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम सम्मुल्लास में वर्णित सृष्टि उत्पत्ति

-डॉ० कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम सम्मुल्लास का विषय सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय है। इन सब विषयों के अलग–अलग विचार और विचारों में पर्याप्त विभेद है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि सृष्टि अपने आप बन जाती है, अपने आप चलती रहती है और अपने आप विनष्ट भी हो जाती है। सृष्टि सदा से है और सदा बनी रहेगी। ऐसा भी मानने वाले लोग है, कि ईश्वर, गॉड या अल्लाह ने कहा कि हो जा और सृष्टि हो गयी। ईसाई और मुसलमानों का कहना है कि परमेश्वर ने एक ही बार सृष्टि बनायी है और एक ही बार प्रलय होगा। सृष्टि कैसे बनी अर्थात् निमित्त कारण क्या था, कैसे सृष्टि की स्थिति और पालन हो रहा है? इसका प्रलय कैसे होगा? इन सब विषयों में आस्तिकों और नास्तिकों में तो मतभेद है ही, आस्तिकों में भी आपस में बहुत मतभेद है। यह बात भी कुछ दूर तक समझ में आती है, किन्तु वेदों को आधार मानकर चलने वाले वेदभक्तों में भी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को लेकर पर्याप्त मतभेद है। अतः ईश्वर और वेद विषय का वर्णन कर लेने के पश्चात् स्वामी दयानन्द ने अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय इन तीन विषयों को लिया है।

परमेश्वर निमित्त कारण–

महर्षि ने वेदों, उपनिषदों और दर्शन ग्रन्थों से अनेक प्रमाण देकर यह बताया है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही अनादि है। परमेश्वर इस सृष्टि का निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है । जीव के कल्याण के लिये परमेश्वर ने प्रकृति से सृष्टि का निर्माण किया सृष्टि बनने के

पूर्व प्रलयकाल में रात्रिरूप अन्धकार था, प्रकृति सत्व, रज, तम परमाणुओं के समुदाय के रूप में थी। परमेश्वर ने सब पृथिव्यादि पदार्थ उत्पन्न किये। महर्षि ऋग्वेद के मन्त्र संख्या 10. 129.07 के आधार पर कहते हैं–यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्ता मत मान। पृष्ठ–209 {इस लेख में हम पं. भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित और विजयकुमार गो. रा. हासानन्द प्रकाशन की पुस्तक से उद्धरित कर रहे हैं।}

स्वामी दयानन्द परमेश्वर को उपादान कारण नहीं मानते हैं। यदि परमेश्वर उपादान कारण हो तो उपादान कारण के गुण कार्य में आने चाहियें, इसलिए प्रकृति में परमेश्वर के गुण आने चाहिये। वेदमन्त्र के आधार पर ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि माना गया है। महर्षि ऋग्वेद का एक मन्त्र प्रमाणरूप में देते हैं–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यरू पिप्पलं स्वाद्वत्यन श्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ ऋग० 1.64.20

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं, एक फल खा रहा है और दूसरा उसे देख रहा है। इसलिये महर्षि लिखते हैं– ''इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव वृक्षरूप संसार में पाप–पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है,

और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर–बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप है। ये तीनों अनादि हैं।" पृष्ठ–210

महर्षि श्वेताश्वतर उपनिषद् का प्रमाण देकर लिखते हैं–प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता। अर्थात् ये तीन जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नही। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भोग करता है। पृष्ठ–211

अद्वैतवादी एक ब्रह्म ही की सत्ता स्वीकार करते हैं, अतः वे ब्रह्म को ही निमित्त कारण और ब्रह्म को ही उपादान कारण भी स्वीकार करते हैं। महर्षि ने बहुत सारे प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है. कि ब्रह्म उपादान कारण नहीं है। जगत् का उपादान कारण तो प्रकृति ही है। प्रकृति क्या है इसका उत्तर सांख्य दर्शन के आधार पर स्वामी जी ने यह दिया है कि प्रकृति सत्व, रज और तमः का संघात है, उसीसे महत्तत्त्व, बुद्धि, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, मन और पृथिव्यादि पाँचों भूत सब उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्म को ब्रह्मज्ञानियों ने पूर्णकाम व आप्तकाम बताया है, इसलिए सृष्टि रचना में ईश्वर का कामनामूलक कोई निजी प्रयोजन नहीं रहता। यह एक व्यवस्था है और ईश्वरीय व्यवस्था है, वह स्वयं अपनी व्यवस्था से बाहर नहीं जाता, उसके नियम सत्य हैं और पूर्ण हैं। उनके अनुसार ईश्वर सृष्टि–रचना करता है, जीवात्माओं के भोग और अपवर्ग की सिद्धि के लिये उसका यह कार्य उसकी एक स्वाभाविक विशेषता है, इसमें कभी कोई अन्तर या विपर्यास आने की सम्भावना नहीं की जा सकती है। सृष्टि रचना के द्वारा ही परमात्मा का बोध होता है और इस मार्ग से जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त करता है। जब यह प्राप्त नहीं होती, तब कर्मों को करता और उनके अनुसार सुख–दुःख आदि फलो को भोगा करता है, सृष्टि–रचना का यही प्रयोजन है।

अद्वैतवादी ब्रह्म को उपादान कारण भी मानते हैं। इस प्रश्न को महर्षि ने विस्तार से लिखा है और सिद्ध किया है कि जब उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं, तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप, जगत् कार्यरूप से असत्, जड़ और आनन्दरहित ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ। ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है। ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है। जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि में कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं, वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वेसा पृथिव्यादि कार्य आदि भी चेतन होना चाहिये ।" पृष्ठ–214

सृष्टि का निर्माण और व्यवस्था–

एक बड़ा प्रश्न यह है कि परमेश्वर ने इस जगत् को बनाया ही क्यों ? लोग सोचते हैं कि यदि यह संसार न बनता तो जीव सुख–दुःख के संकटों में न पड़ता। महर्षि इस तरह के विचार को आलसी और दरिद्र लोगों की बातें बताते हैं, पुरुषार्थी की नहीं। जो सृष्टि के सुख–दुःख की तुलना की जाये तो सुख कई गुना अधिक होता है और बहुत–से पवित्रात्मा जीवनमुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं। पृ०–215

संसार में न्याय, दया आदि परमेश्वर के गुण सृष्टि के निर्माण से ही सार्थक होते हैं– जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

पृ०–216

सभी धार्मिक लोग यह मानते हैं कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है और इसका अर्थ यह करते हैं कि परमेश्वर जो चाहे वह सबकुछ कर सकता है। स्वामी दयानन्द का कहना है कि परमेश्वर कोई असम्भव बात नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिये कारण के बिना कार्य नहीं कर सकता है। बिना मिट्टी के घड़ा नहीं बना सकता है। स्वामीजी कहते हैं कि यदि ईश्वर के सर्वशक्तिमान् होने का यही अर्थ है कि वह बिना कारण सब कुछ कर सकता है तो– बिना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त, जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं ? पृ०–216

इसका सीधा अर्थ है कि परमेश्वर यह सब कुछ नहीं कर सकता, अपने नियमों का विरोध भी नहीं कर सकता। अग्नि का गुण उष्णता हैं, जल शीतलता है और पृथिव्यादि जड़ पदार्थों को विपरीत गुणवाला ईश्वर भी नहीं कर सकता–ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं, इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता है। इसलिये सर्वशक्तिमान का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है। पृ०–216

सृष्टि प्रवाह से अनादि है–

मुसलमान और ईसाई तो एक ही बार सृष्टि का बनना मानते है, किन्तु वैदिक सिद्धान्त में सृष्टि प्रवाह से अनादि है । अनेक बार सृष्टि बनी, प्रलय हुआ, फिर सृष्टि बनी, फिर प्रलय हुआ। इस प्रकार सृष्टि–प्रलय का चक्र अनादि काल से चलता हुआ अनन्तकाल तक चलता रहेगा। एक प्रश्न है कि क्या हर सृष्टि में इसी प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, पशु–पक्षी, वनस्पति, मनुष्य, सब बनते रहे हैं और इसी प्रकार ऐसे ही बनते रहेंगे? महर्षि का उत्तर वेदमन्त्र के आधार पर बहुत सीधा है। परमेश्वर ने जैसे पूर्व में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि बनाये थे, वैसे ही अब बनाये है और आगे भी वैसा ही बनावेगा ।

परमेश्वर का ज्ञान पूर्ण है। उससे भूलचूक होने का प्रश्न ही नहीं, वह सदा एक प्रकार से ही कार्य किया करता है। अतः परमेश्वर के कार्य में सुधार संशोधन इत्यादि के लिये अवकाश नहीं होता। सृष्टि के आदि में जैसे वेदज्ञान प्रकाशित हुआ, जैसे सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, वनस्पति आदि बने, वे सब अपने में त्रुटिरहित हैं और हर सृष्टि में इसी प्रकार परमेश्वर सृष्टि का निर्माण करते रहते हैं।

कुछ मत–पन्थ वालों का यह विचार है कि प्रभु के आदेश से ही सारी सृष्टि एक साथ ही हो जाती है। किन्तु महर्षि वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि "परमेश्वर प्रकृति के उपादान से सारे संसार की सृष्टि क्रमशः करते हैं। सर्वप्रथम आकाश, आकाश के पश्चात् बायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथ्वी, पृथ्वी के पश्चात् ओषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् मनुष्य उत्पन्न होता है । यह सृष्टि निर्माण का क्रम है । कहीं–कहीं सृष्टि के निर्माण क्रम में अग्नि से, कहीं जल से सृष्टि का आरम्भ होना बताया गया है। महर्षि कहते हैं कि जब महाप्रलय होता है तब पूर्वोक्त आकाशादि क्रम से सृष्टि होती है । जब आकाश, और वायु का प्रलय नहीं होता तब अग्नि आदि के क्रम से और जब अग्नि का भी प्रलय नहीं होता तब जल आदि क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस–जिस प्रलय में जहाँ–जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ वहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

सत्यार्थप्रकाश अविद्या का विनाषक एवं विद्या का प्रसारक है

-मनमोहन कुमार आर्य

सत्यार्थप्रकाश ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित सत्य और विद्या का प्रचारक व प्रसारक ग्रन्थ है जिसमे लोगों को सत्यासत्य का ज्ञान कराने के लिये असत्य और अविद्या का खण्डन भी किया गया है। अविद्या को दूर करने के लिये खण्डन बहुत आवश्यक होता है। खण्डन का उद्देश्य यदि किसी का हित करना हो तो वह प्रशंसनीय गुण कहा जा सकता है। माता, पिता तथा आचार्य अपनी सन्तानों व शिष्यों का हित करना चाहते हैं अतः वह उन्हें बुरा काम करने पर डांटते तथा अच्छे काम करने पर उनकी प्रशंसा करते हैं। डाक्टर भी रोगी के रोग को जानकर उसको स्वस्थ करने के लिये कड़वी दवा देते हैं और अति आवश्यक होने पर शल्य क्रिया भी कर देते हैं। यह सब कार्य एक प्रकार से खण्डन ही कहा जा सकता है जिसका मूल उद्देश्य सन्तान, शिष्य व रोगियों का हित करना होता है। संसार में ईश्वर के स्वरूप, उसके गुण, कर्म व स्वभाव को लेकर अज्ञान फैला हुआ है। उस अज्ञान को दूर करने के लिये विद्वान सत्य ज्ञान का प्रकाश करते हैं। सत्य ज्ञान का प्रकाश करने के साथ उन्हें अज्ञान के कारण को जड़ से समाप्त करने के लिये खण्डन करना भी आवश्यक होता है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में देश, समाज व मानव के हित को सर्वोपरि रखकर सत्य मान्यताओं के मण्डन के साथ खण्डन भी किया है जिससे अध्येता वा पाठक को लाभ होता है। खण्डन से मनुष्य की तर्कणा शक्ति बढ़ती है और सत्य मत वा मान्यताओं को स्थापित करने के लिए समाज में प्रचलित असत्य विचारों व मान्यताओं का खण्डन करना आवश्यक होता है।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की रचना अविद्या के नाश तथा विद्या के प्रचार सहित देशवासियों के दूरगामी हित को ध्यान में रखते हुए की थी। उनका उद्देश्य अपनी प्रतिभा व वेद विषयक ज्ञान को प्रदर्शित करना नहीं था। लोगों के अनुरोध करने पर उन्होंने ऐसा किया था। इससे पूर्व वह मौखिक उपदेश द्वारा वैदिक ज्ञान का प्रचार करते थे। उनके समय में लोग वेदों को भूल चुके थे। वेदों का अध्ययन व अध्यापन बन्द हो चुका था। वेदों के अंग शिक्षा, व्याकरण व निरुक्त का भी यथावत व आवश्यकतानुसार अध्ययन सुलभ नहीं था। ऋषि दयानन्द को वेदों के अध्ययन में प्रविष्ट होने के लिये अनेक लोगों से प्रार्थना करनी पड़ी थी। उनको बताया गया था कि मथुरा में स्वामी विरजानन्द सरस्वती व्याकरण के देश के उच्च कोटि के विद्वान हैं। उनकी शरण में जाने से वह वैदिक ज्ञान को सीख सकते हैं। उन्होंने ऐसा ही किया था और सन् 1860 से सन् 1863 तक प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द सरस्वती जी के सान्निध्य में रहकर उनसे व्याकरण का अष्टाध्यायी–महाभाष्य पद्धति से अध्ययन किया था। अध्ययन पूरा होने पर गुरु जी की प्रेरणा से वह अविद्या को दूर करने तथा सत्य वेदविद्या के प्रचार के कार्य में प्रवृत्त हुए थे। आरम्भ में उन्होंने मौखिक प्रचार किया था। धीरे धीरे उनका अभ्यास

बढ़ता गया था और उन्हें अपने वैदिक ज्ञान में परिपक्वता प्राप्त होती गई।

ऋषि दयानन्द को वेद प्रचार के लिये अवैदिक मूर्तिपूजा का खण्डन भी आवश्यक प्रतीत हुआ था। अतः उन्होंने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष, जन्मना जाति व्यवस्था, मृतक श्राद्ध आदि प्रमुख अवैदिक व मिथ्या मान्यताओं का पुरजोर खण्डन किया था तथा तर्क व युक्तियों सहित वेद प्रमाणों से भी निष्पक्ष विद्वदजनों को अपने विचारों से सहमत कराया था। ऋषि दयानन्द ने 16 नवम्बर, सन् 1869 को काशी के आनन्द बाग में 50 हजार लोगों की उपस्थिति में मूर्तिपूजा के समर्थक 27 से अधिक पौराणिक सनातनी विद्वानों से अकेले शास्त्रार्थ किया था। इस शास्त्रार्थ में पौराणिक विद्वान मूर्तिपूजा को वेदानुकूल व वेदविहित सिद्ध नहीं कर सके थे। इससे ऋषि दयानन्द जी की प्रसिद्धि देश विदेश में फैल गई थी और देश के अनेक भागों के लोगों ने उनके प्रचार से प्रभावित होकर मूर्तिपूजा को छोड़कर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अनादि, अनित्य, अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी तथा सृष्टिकर्ता ईश्वर की उपासना ऋषि प्रणीत वैदिक सन्ध्या के द्वारा करनी आरम्भ कर दी थी। आज लाखों लोग उनके अनुयायी हैं जो वेदों का स्वाध्याय करते हुए पौराणिक मिथ्या मान्यताओं से दूर रहकर सत्य पथ का अनुगमन कर रहे हैं। अन्धविश्वासों, मिथ्या व हानिकारक सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने में भी महर्षि दयानन्द सरस्वती का महत्वपूर्ण योगदान है। ऋषि दयानन्द ने ही महाभारत के बाद विलुप्त वेदों व उनके सत्यार्थों का पुनरुद्धार किया था। वेद संसार के सभी लोगों की ईश्वर प्रदत्त बौद्धिक सम्पदा है। इसकी रक्षा, सुरक्षा व आचरण संसार के सभी स्त्री व पुरुषों का परम धर्म है। ऋषि दयानन्द का लिखा व प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ देश व संसार से अविद्या को दूर करने का प्रमुख साधन है। जिस प्रकार किसी पदार्थ का स्वाद बिना स्वयं उस पदार्थ को चखे वा भक्षण किये पता नहीं चलता, इसी प्रकार से सत्यार्थप्रकाश का महत्व व लाभ बिना इसका आद्योपान्त अध्ययन कर इसको समझे बिना नहीं होता। जिन लोगों ने इस ग्रन्थ को पढ़ा व समझा है, उन्होंने अपने जीवन को इसके अध्ययन से लाभान्वित माना है। पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने इस ग्रन्थ का 18 बार अध्ययन करने पर कहा था कि यह ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण हैं कि यदि उन्हें इस ग्रन्थ को खरीदने के लिये अपनी संचित समस्त सम्पत्ति वा पूंजी का भी व्यय करना पड़ता तो वह अवश्य ऐसा करते। सत्यार्थप्रकाश का महत्व वर्णनातीत है। हमने भी सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अनेक बार पाठ किया है और हम भी पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने जो कहा है, उनकी बात की पुष्टि करते हैं। अन्य सभी निष्पक्ष अध्येता विद्वानों की भी यही राय होती है।

मनुष्य अल्पज्ञ प्राणी है। यह पूर्ण ज्ञानी कदापि नहीं हो सकता। पूर्ण ज्ञानी तो केवल परमात्मा है। परमात्मा पूर्ण ज्ञानी अर्थात् 'सर्वज्ञ' इसलिये है क्योंकि वह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, अनादि, नित्य, जन्म–मरण के बन्धनों से रहित आदि अनेक गुणों से युक्त है। जीवात्मा अल्पज्ञ है जिसका कारण उसका एकदेशी, ससीम, जन्म–मरण धर्मा व कर्म–फल बन्धनों में फंसा होना आदि हैं। जिस प्रकार अज्ञानी को ज्ञान, ज्ञानी की संगति से प्राप्त होता है उसी प्रकार से अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ परमात्मा के सान्निध्य से ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों को चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। ईश्वर से चार ऋषियों और ब्रह्मा जी को वेद ज्ञान की

प्राप्ति का विवरण ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में दिया है। अतः वेदों को पढ़कर व उसके शब्दार्थ एवं भावार्थ को जानकर ही मनुष्य अपना अज्ञान दूर कर ज्ञान से पूर्ण हो सकता है। हमारे सभी ऋषि–मुनि ज्ञान प्राप्ति के लिये व्याकरण ग्रन्थों को पढ़ने के बाद योगाभ्यास करते हुए वेद एवं ऋषियों के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। ऋषि दयानन्द जी ने भी ऐसा ही किया था। उन्होंने संसार को कोई नया सिद्धान्त नहीं दिया। उन्होंने वही कहा व लिखा है जो वेद व ऋषियों के ग्रन्थ प्रक्षेप–रहित मनुस्मृति, दर्शन, उपनिषद आदि में लिखा था। इन ग्रन्थों की भी वही बातें ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखी हैं जिनकी उन्होंने अपनी ऊहा, तर्क व युक्ति से परीक्षा की थी।

अतः वेद वा सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन कर मनुष्य ईश्वर, जीव, प्रकृति, कार्य सृष्टि, मनुष्य के कर्तव्य व अकर्तव्य तथा सामाजिक ज्ञान के सभी विषयों सहित कृषि, आयुर्वेदीय चिकित्सा, संगीत, भवन निर्माण आदि सभी विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करता है। हमारे वर्तमान के मनीषियों व वैज्ञानिकों ने अपने चिन्तन, मनन, अध्ययन, अभ्यास आदि से इस ज्ञान को काफी बढ़ाया है। उनका यह कार्य प्रशंसा योग्य है। परमात्मा ने हमें बुद्धि दी ही इसलिये है कि हम वेद पढ़कर संक्षिप्त वा बीज रूप में अनेकानेक वा समस्त विषयों के ज्ञान को प्राप्त करें तथा अपने अध्ययन व चिन्तन–मनन आदि के द्वारा उसमें वृद्धि करें। यही कारण है कि आर्यसमाज विज्ञान के नियमों व कार्यों को भी तर्क, युक्ति, विवेचन, विश्लेषण तथा अनुभव पर आधारित होने के कारण स्वीकार करता है। यह भी लिख दें कि वेदज्ञान तथा विज्ञान के नियमों में कहीं किसी प्रकार का विरोध नहीं है। विज्ञान वेदज्ञान के अनुकूल व अनुरूप ही है। वेदों के आविर्भाव के बिना संसार में भाषा व ज्ञान का आरम्भ व प्रचार नहीं हो सकता था। विश्व की प्रथम भाषा संस्कृत का आरम्भ भी वेद के आविर्भाव के साथ सृष्टि के आरम्भ काल में हुआ था। वैज्ञानिकों ने उसी ज्ञान व विज्ञान का विस्तार आधुनिक समय में अपने पुरुषार्थ सहित तर्क व वैज्ञानिक प्रयोगों से किया है। सभी वैज्ञानिक इन कार्यों के लिये प्रशंसा के पात्र हैं। एक बात में विज्ञान भी वेद एवं वैदिक साहित्य में निहित आध्यात्मिक ज्ञान से दूर व अनभिज्ञ प्रायः है। वेद आदि ग्रन्थों में वह ज्ञान ईश्वर व जीवात्मा से सम्बन्धित है। विज्ञान वा वैज्ञानिकों को ईश्वर, जीवात्मा व मनुष्य के ईश्वर के प्रति कर्तव्यों के ज्ञान के लिये वेद, उपनिषद, दर्शन व योग की शरण लेनी चाहिये। इससे वह अध्यात्म एवं विज्ञान को भली प्रकार से समझ पायेंगे।

जवानी में व्यक्ति धन कमाने के लिए...
अपना स्वास्थ्य, खो देता है।
बुढ़ापे में स्वास्थ्य के लिए...
अपना धन, खो देता है।

ओ३म् की व्याख्या

–डा० महेश कुमार शर्मा

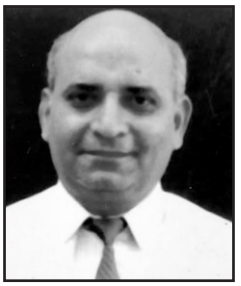

ओ३म् यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि यह अ, उ और म् तीन अक्षरों के समुदाय से मिलकर बना है। इस ओ३म् नाम से परमेश्वर के बहुत से नाम आते हैं, जैसे अ, अकार से विराट्, अग्नि और विश्व आदि, उ, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजस आदि और म्, मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ आदि ।

ओ तथा म् के मध्य ३ का अंक प्लुत स्वर अर्थात् तीन मात्रा का सूचक है। संस्कृत भाषा में स्वर तीन प्रकार के होते हैं। ह्रस्व स्वर, दीर्घ स्वर और प्लुत स्वर। दीर्घ स्वर के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से दुगुना समय अधिक लगता है। प्लुत स्वर के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से तिगुना अधिक समय लगता है। इस प्रकार ओ३म् शब्द का उच्चारण करते समय, यह ध्यान रखना चाहिए कि ओ अक्षर के उच्चारण के समय ह्रस्व स्वर से तिगुना अधिक समय लगना चाहिए और म् का उच्चारण करते समय होंठ बन्द करते हुए भ्रमर के समान गुंजन की ध्वनि निकलनी चाहिए। पाणिनि जी के अष्टाध्यायी के सूत्र – "ओमभ्यादाने।" (अष्टा0 : 8. 2.8.7.) के अनुसार जब किसी मंत्र के आदि में "ओम्" शब्द लिखा जाता है तो वह "प्लुत स्वर" हो जाता है ।

ओ३म् शब्द की महिमा का बखान वेदों, उपवेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण, आरण्यक व प्रातिशाख्य ग्रंथों, दर्शनों, स्मृतियों, योग व सूत्र ग्रंथों, तंत्र शास्त्रों, पुराणों, रामचरितमानस, महाभारत, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में जगह–जगह पर किया गया है। यहाँ तक कि कुरआन शरीफ, बाइबिल, गुरु ग्रंथ साहिब में और

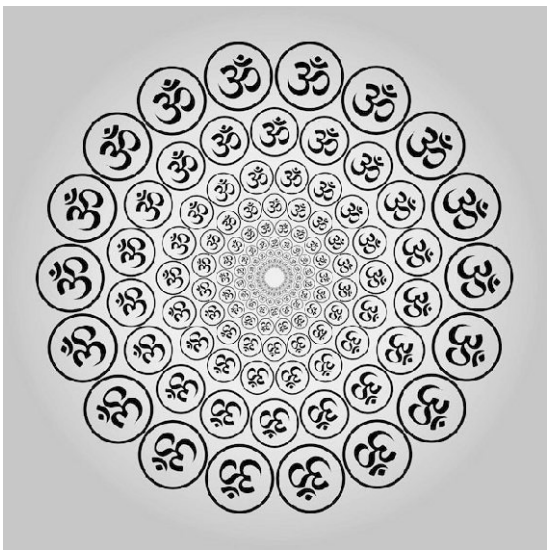

जैन, बौद्ध, यहूदी, पारसी, साबिई आदि धर्मों के ग्रंथों में ओम् सर्वत्र मिलता है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पंचमहायज्ञविधि, संस्कारविधि व अपने अन्य ग्रंथों में ओ३म् शब्द को वेदों व अन्य ग्रंथों से दुहकर सार रूप में स्पष्ट किया है जो अद्वितीय, अनुपम और अद्‌भुत है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में परमेश्वर के सौ से भी अधिक नामों की व्याख्या करते हुए, अपनी तार्किक बुद्धि और अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि परमात्मा का निज नाम ओ३म् ही है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना विषय के अन्तर्गत महर्षि ने लिखा है कि जो ईश्वर का ओ३म्/ओंकार नाम है, सो पिता–पुत्र के संबंध के समान है ।

वैसे तो प्रकाशित उपनिषदों की कुल संख्या 223 हैं परन्तु 11 प्रामाणिक उपनिषद् के नाम हैं–ईश, केन, कठ, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, मुण्डक, माण्डूक्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। इन सभी में ओ३म् शब्द का वर्णन है।

माण्डूक्य उपनिषद् में इस ओ३म् शब्द की विस्तार और पूर्ण रूप से टीका की गई है।

परमात्मा का निज नाम ओ३म् बहुत छोटा है, परन्तु अर्थों की दृष्टि से यह सबसे बड़ा है, इसके अर्थ अनन्त हैं। ओ३म् में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। देवनागरी लिपि में ओ३म् को ॐ के रूप में लिखा जाता है। भिन्न–भिन्न लिपियों जैसे तमिल, बंगला, जैन, तिब्बती, चीनी, गुरुमुखी आदि लिपियों में ओ३म् (ॐ) को विभिन्न स्वरूपों में लिखा जाता है। ब्राह्मी लिपि में स्वस्तिक चिह्न, ओ३म् का ही प्रतिरूप है। सभी हिन्दू कलाओं में, धार्मिक स्थलों में, मांगलिक कार्यों और शुभ अवसरों पर, सारे भारत, नेपाल और कुछ अन्य देशों में ओ३म् (ॐ) एक पवित्र बोध चिह्न के रूप में सर्वत्र लिखा हुआ मिलता है। हिन्दू धर्म में कुछ मत–मतान्तरों के अनुसार ॐ चिह्न में चन्द्र बिन्दु का अपना विशेष महत्व है। उनकी मान्यता है कि चन्द्रमा का आकार, चन्द्रवंशी योगिराज श्री कृष्ण महाराज जी का प्रतीक है और बिन्दु, सूर्य, सूर्यवंशी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी का द्योतक है।

ओ३म् शब्द "आप्लृ" व्याप्तौ और "अव्" रक्षणे दोनों धातुओं से सिद्ध होता है। "आप्लृ" धातु से निर्मित ओ३म् का अर्थ सर्वव्यापी होता है और "अव्" धातु से निर्मित ओ३म् का अर्थ संसार सागर से रक्षा करने वाला होता है, वह परमात्मा हमारी रक्षा करता है। धातु पाठ में जितने अधिक अर्थ "अव्" धातु के हैं, उतने किसी अन्य धातु के नहीं हैं। रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश अवति, श्रवण, स्वाम्यर्थ, याचन, इच्छा क्रिया, इच्छित अवति, दीप्ति अवति दीप्तति, आंलिगन, वाप्ति, हिंसा, दान, भोग और वृद्धि, इसके कम से कम १६ अर्थ हैं । "अव्" से ब्रह्म के विराट का स्त्रोत, रक्षा करने वाला, प्रीति का सागर, तृप्ति का दाता, गायत्री का भर्गः अर्थात् द्युति–स्वरूप, कण–कण में प्रविष्ट, सर्वेश, समर्थ, सर्वत्र–सक्रिय आदि परमेश्वर ही है, उसका निज नाम ओ३म् ही है ।

ओ३म् (ओंकार) शब्द का संस्कृत नाम "प्रणव" है। योगिराज पतंजलि अपने योगशास्त्र में कहते हैं –"तस्य वाचकः प्रणवः।" (योग सूत्रः 1.27.) अर्थात् उस ईश्वर का नाम "प्रणव" है। इसकी उत्पत्ति "नू" (न, ऊ) धातु से हुई है, अर्थ है, चिल्लाना, ध्वनि के साथ स्तुति करना। ब्राह्मण ग्रंथों, छान्दोग्य उपनिषद् तथा स्त्रोत सूत्रों के अनुसार प्रनू व ओ३म् के उच्चारण के समय, मन्द ध्वनि, मधुमक्खी के समान भिनभिनाहट की तरह आवाज निकालनी चाहिए। भ्रामरी प्राणायाम में, साधक द्वारा सुख आसन पर बैठ कर, हाथों की अंगुलियों और अंगूठों से आँखों और कानों को बन्द करके गहरा श्वास अन्दर भरकर, ओ३म् का प्लुत स्वर में उच्चारण कर, भ्रमर के समान गुंजन करते हुए नाद अनुस्वार ध्वनि निकाली जाती है। नृसिंह पूर्व तापनीय उपनिषद् में कहा गया है, जो प्रणव का अध्ययन करता है, वह सबका अध्ययन करता है, इसलिए ओ३म् का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। प्रणव से ही त्रिपदा गायत्री प्रकट हुई, ऐसा शास्त्रों में दिया गया है। गीता में कहा गया है– "प्रणवः सर्ववेदषु।" (गीताः 7.8.) अर्थात् सम्पूर्ण वेदों में सार प्रणव (ओंकार) ही है।

ओ३म् का पर्यायवाची शब्द उद्गीथ है, इसका अर्थ है, जो गाया जाये, छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है –

"ओमिति हि एतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।
ओमित्युद्गायति तस्योपाख्यानम्।।" (छान्दो. : 1.1.1)

अर्थात् उद्गीथ ही प्रणव है, वही ओ३म् है। ओ३म् अक्षर को ही उद्गीथ समझकर मनुष्य उपासना करे।

उद्गीथ आकाश की तरह अनन्त है। उद्गीथ के तीन अक्षर, उद्, गी तथा थ यानी उत् , गीर् और थम् के अनेक अर्थ हैं, जैसे–प्राण, वाणी और अन्नय द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीय आदित्य, वायु और अग्निय सामवेद, यजुर्वेद और ऋग्वेद आदि। जो मनुष्य उद्गीथ के अक्षरों को विचार कर, इनके अर्थ जानकर, आशय समझता है और

उच्च स्वर में स्तुति गान करता है, वह अन्नवान हो जाता है। उद्गीथ प्राणायाम में, साधक द्वारा सुख आसन पर ध्यान मुद्रा में बैठकर, गहरा श्वास अन्दर भरकर, ओ३म् का प्लुत स्वर में उच्चारण, आँखें बन्दकर, एकाग्रचित्त होकर, आज्ञाचक्र पर ध्यान केंद्रित कर नाद अनुस्वार ध्वनि के साथ किया जाता है। ओ३म् या ओंकार को छान्दोग्य तथा कथा उपनिषदों में "अकणार" या "एककणार" के रूप में भी कहा गया है, परन्तु अब ये नाम प्रचलित नहीं हैं ।

वैदिक धर्म में समस्त सृष्टि निर्माण का आधार त्रैतवाद माना गया है। त्रैतवाद के अनुसार तीन पदार्थ ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं और ओ३म् शब्द में तीन अक्षर अ, उ और म् ज्ञान देते हैं कि यह जगत् तीन तत्वों ईश्वर, जीव और प्रकृति से विभूषित है। ईश्वर (ब्रह्म) सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वत्र आदि है, जीव चेतन है और प्रकृति जड़ है। प्रकृति सत् स्वरूप है, जीव सत् व चित् है और ईश्वर सत्, चित् और आनंद स्वरूप है ।

व्याकरण माला के अनुसार ओम् शब्द में अ तथा उ स्वर अक्षर हैं और म् व्यंजन अक्षर है। स्वर स्वतंत्र अक्षर होते हैं और व्यंजन अक्षर, स्वर पर आश्रित होते हैं। स्वर के उच्चारण में किसी दूसरे अक्षर की आवश्यकता नहीं पड़ती है, जबकि व्यंजन के उच्चारण में स्वर की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार संसार में भी परमात्मा और जीवात्मा, ये दो स्वतंत्र पदार्थ हैं और प्रकृति जड़ पदार्थ है जो ईश्वर और जीव के अधीन है। ईश्वर और जीव अपनी सत्ता और चेतनता से स्वयं प्रकाशित होते हैं, स्वतंत्र रूप से कर्म करते हैं, परन्तु कारणरूपा प्रकृति में यदि ईश्वेच्छा और जीवात्मा का प्रवेश न हो तो वह कार्यरूप में कभी भी प्रकट नहीं हो सकती। परमात्मा सारी सृष्टि का उत्पादक है तथा जड़–चेतन (प्रकृति–जीव) को प्रेरित करके उनमें नवजीवन का संचार करता है।

जिस प्रकार "अ", "उ" और "म्" के मिलाप से ओ३म् बना है, इसी प्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति से इस अनन्त संसार की रचना हुई है। ओम् की रचना में जैसे "अ" और "म्" के मध्य "उ" की स्थिति है, वैसे ही ईश्वर और प्रकृति (माया) के मध्य विचरने वाला जीवात्मा है। हम दैनिक जीवन में देखते हैं कि कभी यह जीव, ब्रह्म की ओर और कभी प्रकृति (माया) की ओर दौड़ता है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कार विधि के अन्तर्गत जातकर्म संस्कार में उल्लेख किया है कि बच्चे के जन्म होने के बाद उसका पिता घी और मधु दोनों बराबर मात्रा में मिलाकर, सोने की शलाका से नवजात शिशु की जीभ पर "ओ३म्" लिखे और उसके दाँये कान में "वेदोऽसीति", तेरा गुप्त नाम वेद है, ये शब्द कहे। शिशु के दाँये तथा बॉये कान में नौ मंत्र, "ओ३म् मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। "इत्यादि का, बच्चे का पिता ओंकार सहित जप करे। ओ३म् ही हम सबकी आत्मा और प्राणशक्ति है, यही संजीवनी औषधि है।

मनुष्य जब मरणासन्न अवस्था में होता है, तब भी ओम् के उच्चारण करने की शिक्षा यजुर्वेद में दी गई है। "ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृत्ँस्मर।।" (यजु0 40.15), अर्थात् हे प्राणी (मानव) तू "ओ३म्" का स्मरण कर, इसी का स्मरण सुखदायी है। गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण महाराज जी कहते हैं–

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।"

अर्थात् जो साधक अन्त समय में ओ३म् अक्षर रूप ब्रह्म का मानसिक उच्चारण और परमात्मा का चिन्तन करते हुए शरीर को त्याग कर, दसवें द्वार से प्राणों को छोड़ता है, वह परमगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार मनुष्य को अपना जीवन "ओ३म्" से प्रारंभ करके, इसके स्मरण के साथ ही समाप्त करना चाहिए।

"ओ३म्" से स्तुति, प्रार्थना व उपासना, मनुष्य को वह जीवन–शक्ति प्रदान करती है, जो

सद्यप्रसूता गाय का दूध उसके नवजात शिशु को देता है। यदि हम यह कहें कि सफल जीवन का आधार "ओ३म्" ही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। महर्षि पतंजलि ने "ओ३म्" के जाप का विधान किया है– "तज्जपस्तदर्थ भावनम्।" योगसूत्र0 1.28), इस सूत्र के अनुसार परमेश्वर की वाणी "ओ३म्" ही है और "ओ३म्" का जप इसके अर्थ जानकर ही करना चाहिए। यह "ओ३म्" मानव की पवित्र इच्छाओं की पूर्ति करने वाला एक प्रकार का बीज है। शुद्ध मन से एकाग्र होकर उच्चारित किया गया "ओ३म्" अंततः मोक्षदाता और नमस्करणीय सिद्ध होता है। "ओ३म्" का जप ही सुखदायी है और इसके विधिवत जप, चिन्तन व मनन से व्यक्ति का मानसिक व बुद्धि का विकास होता है तथा विभिन्न प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं।

"ओ३म्" तारक है– " ओ३म् " शब्द का यह महत्व शास्त्रों में दिया गया है । इसके उच्चारण व जाप से इस मायावी दुनिया में अनेक अद्भुत फायदे हैं । "ओ३म्" का शुद्ध और विधिवत उच्चारण करने से ही प्राणायाम और योग के माध्यम से मानव अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है। इसके अर्थ समझकर सही जाप से ही मन के साथ–साथ तन की भी शुद्धि होती है। विभिन्न ध्वनियों और आवृत्तियों में "ओ३म्" का एकाग्रचित्त होकर जप करने से रोगी मनुष्य बीमारियों से छुटकारा पाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है। निर्मल मन से "ओ३म्" का वाचिक, उपांशु और मानस विधियों से जप करने से साधक चहुंमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर सफलता के सोपान पर चढ़कर अपने मकसद, मंसूबे और मंजिल को पा लेता है ।

श्रद्धांजलि

चार वेदों का काव्यानुवाद कर रहे वैदिक विद्वान श्री वीरेन्द्र राजपूत जी की 75 वर्षीय धर्मपत्नी माता सुशीला देवी जी का देहरादून में दिनांक 23–9–2022 को प्रातः देहावसान हो गया। माता जी की अन्त्येष्टि पूर्ण वैदिक रीति से देहरादून के शमशान घाट में की गई। अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक पुरोहित पं. वेदवसु शास्त्री एवं गुरुकुल पौंधा के आचार्य डा. धनंजय जी के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून माता सुशीला देवी जी के असामयिक निधन पर दुःख व्यक्त करता है और उन्हें श्रद्धांजलि देता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह माता जी की आत्मा को शान्ति व सद्गति प्रदान करें और उनके परिवार जनों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दे।

(विजय आर्य)
अध्यक्ष

(प्रेम प्रकाश शर्मा)
सचिव

हमारा वर्तमान जन्म हमारे पूर्वजन्म का पुनर्जन्म है

–मनमोहन कुमार आर्य

वेद और वैदिक परम्परा में ईश्वर को सनातन, अजन्मा, अमर, अविनाशी तथा जीवात्मा को जन्म व मरण के बन्धन में बन्धा हुआ और कर्मों का कर्ता और उसके फलों को भोगने वाला माना गया है। वेद क्या हैं? वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो ईश्वर ने सृष्टि को बनाकर मनुष्यादि प्राणियों की अमैथुनी सृष्टि कर सर्ग वा सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा नाम वाले चार ऋषियों को दिया था। अनेक तर्क व प्रमाणों से वेद ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होता है। इसका एक प्रमाण तो यह है कि जब संसार में कोई गुरु, शिक्षक, माता–पिता, विद्वान, भाषा आदि नहीं थी तब आदि मनुष्यों को परमात्मा ने वेदों का ज्ञान दिया था। यदि परमात्मा वेदों का ज्ञान न देता तो अद्यावधि सभी मनुष्य जाति भाषा का ज्ञान न होने व भाषा का निर्माण न कर सकने की सामर्थ वा शक्ति के कारण मूक व बधिर होते। ऐसा होने पर सृष्टि का इसकी उत्पत्ति के बाद अधिक समय तक चलना भी सम्भव नहीं था। ईश्वर चेतन और सर्वव्यापक होने से सर्वज्ञानमय अर्थात् सर्वज्ञ है। जिस तरह से पिता अपने पुत्रों को ज्ञान देता व दिलाता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी प्रजा अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियों को ज्ञान देता है। वेदों की सभी बातें तर्क व प्रमाणों से सिद्ध है। वेदों में ईश्वर का जो स्वरूप बताया है वह सत्य है और उसे प्रायः सभी मतों के लोग मानते हैं। हां, अपने–अपने मत की अल्प, न्यून व वेद विपरीत शिक्षाओं के कारण वह इसे अपनी अज्ञानता आदि के कारण खुल कर स्वीकार नहीं कर पाते। वेद ईश्वर को सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, सृष्टिकर्ता, जीवात्माओं को जन्म व मृत्यु देने वाला होने सहित उनका पालनकर्ता बताते हैं।

मनुष्य का जीवन मात्र शरीर के अस्तित्व तक सीमित नहीं है। मनुष्य व प्राणियों के शरीर तो जड़ भौतिक पदार्थों अर्थात् पंचभूतों से मिलकर बने हैं। इन शरीरों में जो ज्ञान व कर्म करने की शक्ति है वह इसमें अनादि काल से अस्तित्व रखने वाली जीवात्माओं के कारण है। यह आत्मा ही मनुष्य व अन्य प्राणियों के जन्म से पूर्व पिता व माता के शरीरों में परमात्मा की प्रेरणा द्वारा प्रविष्ट होती है। उसके बाद जब माता के गर्भ में आत्मा का शरीर पूर्ण रूप से बन जाता है, तब गर्भ काल के दस मास बाद मनुष्य का शिशुरूप में जन्म होता है। जीवित शरीर में आत्मा होने का प्रमाण यह है कि मृत्यु होने पर मनुष्य व अन्य सभी प्राणियों का शरीर जड़वत् व निष्क्रिय हो जाता है। इसका एकमात्र कारण शरीर से चेतन जीवात्मा का अपने सूक्ष्म शरीर सहित निकल जाना होता है। जब तक शरीर में आत्मा होता है तब तक मनुष्य का शरीर सक्रिय रहता है और आत्मा उसमे रहकर सुख व दुःख भोगता रहता है। अनेक मनुष्यों को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास भी हो जाता है। वह पहले ही अपने परिवारजनों को बता देते हैं कि अब उनके जाने का समय आ गया है और उन्हें जाना होगा। अनेक महात्माओं को अपने अन्तिम समय पर स्वेच्छा से आत्मा को शरीर से निकालते अर्थात् मृत्यु का वरण करते भी देखा गया है। ऋषि दयानन्द ने विषपान के कारण जर्जरित शरीर से अपनी आत्मा को ईश्वर का गुणगान करते हुए मास, पक्ष, दिन व तिथि आदि पूछ कर, शौर कर्म करा, शरीर को जल से शुद्ध कर व नये शुद्ध वस्त्र धारण कर ईश्वर की प्रार्थना करते हुए लम्बी श्वांस भर कर अपनी आत्मा को शरीर से बाहर निकाल दिया था। यदि शरीर में आत्मा न होती तो ऋषि दयानन्द और कुछ अन्य विद्वानों को इससे मिलती

जुलती प्रकिया करने की आवश्यकता नहीं थी। आत्मा का अस्तित्व होना सत्य है। वह जन्म से पूर्व माता के गर्भ में आती है और मृत्यु के समय शरीर को छोड़कर ईश्वर की प्रेरणा व व्यवस्था से निकल जाती है। ईश्वर के कर्म–फल सिद्धान्त एवं जन्म विषयक नियमों के अनुसार कुछ समय बाद उस मृतक आत्मा का पुनर्जन्म हो जाता है। अतः जन्म–मरण सिद्ध होने के साथ मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व बने रहना भी सिद्ध होता है।

पुनर्जन्म के विषय में एक प्रश्न किया जाता है कि यदि यह हमारा पुनर्जन्म है तो हमें अपने पूर्वजन्म की स्मृतियां क्यों नहीं होतीं? इसका उत्तर यह है कि मृत्यु होने पर हमारा पूरा शरीर जिसमें सभी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां होती हैं, आत्मा से पृथक हो जाते हैं और उनसे युक्त शरीर को अग्नि को अर्पित कर नष्ट कर दिया जाता है। पूर्व शरीर के न रहने और उसकी आत्मा को नया जन्म लेने से लगभग 10 महीनों तक तो मां के गर्भ में रहना ही पड़ता है। इन 10 महीनों व शैशव काल में मनुष्य को पूर्वजन्म की बातों की विस्मृति हो जाती है। हम जानते हैं कि हम जो शब्द व वाक्य बोलते हैं, उनमें से पांच दस वाक्य बोलने के बाद यदि उन्हें दोहराना हो तो हम उन्हें उसी श्रृखंला व क्रमबद्धता में दोहरा नहीं सकते। हमने कल रात में क्या खाया, परसो दिन में व रात को क्या खाया था, हम प्रायः भूल जाते हैं। तीन चार दिन पहले जो खाया–पीया होता है, वह किसी को स्मरण नहीं रहता। हमने कल, परसों व उससे पूर्व के दिनों में किस रंग के अपने कौन से वस्त्र पहने थे, दो–चार दिनों में कब–कब किस–किस से मिले थे, यह भी याद नहीं रहता। यदि हमें दो चार दिन की बातें ही याद नहीं रहती, उन्हें हम भूल जाते हैं, तो फिर पूर्वजन्म जिसमें हमारा शरीर हमसे पृथक हो गया तथा 10 महीनों व उससे कुछ अधिक का समय हमारे पुनर्जन्म में व्यतीत हो गया, ऐसे में पूर्वजन्म की स्मृतियों का स्मरण रहना सम्भव नहीं होता। ऐसा होने में आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

मनुष्य का मन एक समय में एक ही व्यवहार करता है। उसे हर समय अहसास व विश्वास रहता है कि उसका अस्तित्व है। अतः इस कारण भी वह पूर्वजन्म की स्मृतियों को स्मरण नहीं कर पाता। एक कारण यह भी होता है कि जन्म लेने से सन्तान के किशोर अवस्था में आने तक माता–पिता व अन्य परिवार जनों द्वारा बोली व कही जाने वाली अनेक बातों के संस्कार आत्मा व मन पर अंकित हो जाते हैं। इस लिये भी पुरानी स्मृतियां धूमिल पड़ जाती हैं। इस कारण भी पूर्वजन्म की स्मृतियां स्मरण नहीं रह पातीं।

परमात्मा ने मनुष्य की आत्मा के अल्पज्ञ होने के कारण भूलने का नियम बनाकर मनुष्यों का लाभ ही किया है। इस उदाहरण पर विचार करें कि पूर्वजन्म में मैं राजा था तथा इस जन्म में अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण मेरा एक निर्धन व अभावग्रस्त परिवार में जन्म हो गया। यदि मुझे पूर्वजन्म का पूरा वृतान्त स्मरण रहेगा तो मेरा यह जीवन पिछले जन्म की स्मृतियों को याद कर व इस जन्म की प्रतिकूल परिस्थितियों पर विचार कर दुःख मनाने में ही व्यतीत हो जायेगा। अतः हमें ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये कि हमें पूर्व जन्म की स्मृतियां स्मरण नहीं हैं। हम एक प्रकार से जन्म के बाद से ही पूर्व स्मृतियों को विस्मृत कर नया जीवन व्यतीत करते हैं और इस जन्म का भरपूर आनन्द ले सकते हैं। यह ईश्वर की हम पर बहुत बड़ी कृपा है।

एक उदाहरण यह भी ले सकते हैं कि हमारे परिवार में किसी अत्यन्त प्रिय की मृत्यु हो जाये तो उससे हम दुःखी रहेंगे। यदि हमें यह दुःख हर समय स्मरण रहेगा तो हम जीवन को धैर्य व शान्ति से चला नहीं पायेंगे। कोई भी घटना, प्रिय व अप्रिय घटती है तो उसके बाद से ही हम उसे भूलना आरम्भ हो जाते हैं और हमारा दुःख भी समय के साथ कम होता जाता है। अपने प्रिय की मृत्यु के समय परिवारजनों को जो दुःख होता है उतना दुःख कुछ घंटे बात नहीं रहता। दो चार दिनों में तो मनुष्य सामान्य हो जाता है। ईश्वर ने पुरानी घटनाओं को भूल जाने का जो स्वभाव हमें दिया है,

वह हमारे लिये हितकर है। इस कारण भी हमें पूर्वजन्म की मृत्यु एवं एवं घटनाओं के प्रसंग स्मरण नहीं रहते।

पुनर्जन्म का प्रमाण इस बात में भी है कि संसार में कोई नया पदार्थ बनता नहीं है। इसका तात्पर्य है कि अभाव से भाव अर्थात् शून्य से किसी नये पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती। कोई मौलिक पदार्थ होगा, उसी से परमात्मा या मनुष्य रचना कर सकते हैं। हम मकान बनाते हैं तो हमें इसमें मिट्टी, ईंट, बजरी, पत्थर, चूना, सीमेंट तथा सरियों आदि की आवश्यकता होती है। यह पदार्थ व इनकी कारण सामग्री परमात्मा ने पहले से ही सृष्टि में सुलभ करा रखी है। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर जड़ प्रकृति के पदार्थों से परमात्मा माता के गर्भ में बनाता है जिसका जन्म लेने के बाद भोजन आदि करके विकास व विस्तार होता है। जीवात्मा अनादि, अनुत्पन्न व नित्य है। यदि परमात्मा इसको बार बार जन्म न दे तो इसे सुख नहीं मिल सकता। ईश्वर सामर्थ्यवान् है, अतः उस पर दोष आयेगा यदि वह आत्मा को जन्म देने की सामर्थ्य होने पर भी जन्म न दे। ईश्वर हमसे अधिक ज्ञानी और बुद्धिमान है। वह हमें इस प्रकार की आलोचनाओं का अवसर ही नहीं देता। अतः वह आत्मा को मृत्यु के बाद शीघ्र जन्म देता है। किसी कारणवश जब शरीर आत्मा के रहने के योग्य नहीं रहता तो मृत्यु होती है और मनुष्यों व अन्य प्राणियों का जो कर्माशय होता है उसके अनुसार उसका पुनर्जन्म व नया जन्म होता है। जन्म–मरण का यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। यह जन्म व मरण का चक्र कभी समाप्त होने वाला नहीं है। हां, अत्यधिक शुभ कर्मों जिसमें ईश्वर व आत्मा को जानना, ईश्वर की उपासना करना, सबसे प्रेमपूर्वक सत्य का व्यवहार करना आदि कर्मों को करके व ईश्वर का साक्षात्कार करके मनुष्य की आत्मा को मोक्ष मिल जाता है। मोक्ष की अवधि 31 नील 10 खरब और 40 अरब वर्ष पूर्ण होने पर पुनः जन्म–मरण का चक्र आरम्भ हो जाता है। हम भी अनादि काल से जन्म व मरण के बन्धन में बन्धें हुए हैं और मोक्ष मिलने तक और उसके बाद भी मोक्ष की अवधि पूरी होने पर हमारा जन्म व मरण का चक्र पुनः आरम्भ हो जायेगा।

हमारा यह जन्म हमारे पूर्वजन्म का पुनर्जन्म है और हमारा आने वाला व उसके बाद के सभी जन्म पुनर्जन्म होंगे। हमारे जीवन का उद्देश्य ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव को जानकर तथा आत्मा से ईश्वरोपासना आदि कर्मों को करके ईश्वर का साक्षात्कार करना है और आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर आनन्द में विचरना है। हम पाठक मित्रों से निवेदन करेंगे कि वह जीवन व मरण तथा मोक्ष से जुड़े प्रश्नों को समझने के लिये ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ सहित उपनिषद, दर्शन एवं वेदों का अध्ययन करें। इससे उन्हें संसार के सभी जटिल प्रश्नों का सच्चा समाधान प्राप्त होगा।

सफलता आपकी परछाई है।
यदि आप प्रकाश की तरफ चल रहे हैं,
तो इसे पकड़ने की कोशिश न करें,
यह स्वयं ही पीछे–पीछे आएगी।

रोग एवं उनके आयुर्वेदिक उपचार

-पं० श्री लालबिहारी जी मिश्र

1–सूर्यावर्त (Migraine)

आवर्त का अर्थ होता है चारों ओर चक्कर लगाना। इस प्रकार सूर्यावर्त का अभिप्राय यह होता है कि पृथ्वी का अपनी धूरी पर चक्कर लगाना, जिसमें सूर्य का पूर्व दिशा में उदित होना तथा पश्चिम में अस्त होना प्रतीत होता है। सूर्य के इस आवर्तन से जो रोग उत्पन्न होता है, उसे भी लक्षणों से सूर्यावर्त ही कहा जाता है। इस तरह सूर्यावर्त शब्द से रोगका पूरा परिचय मिल जाता है।

पूर्व दिशामें सूर्यका यह उदय भारत से दो–तीन घंटा पहले ही हो जाता है। भारत से एक घंटा पहले जापान में सूर्योदय होता है और जापान से एक घंटा पहले प्रशान्त महासागरमें। इस तरह सूर्य का दर्शन भारत में दो घंटे बाद ही होता है। सूर्य के इस आवर्तन (उदय)– के साथ ही सूर्यावर्त का रोग भारतवासी रोगियों को होने लगता है क्योंकि सूर्य अग्नि का पिण्ड है और अग्नि ही शरीर में पित्तरूप से प्रतिष्ठित है। अतः सूर्य से पित्त का गहरा सम्बन्ध है। प्रशान्त महासागर में जब सूर्य का आवर्तन हो जाता है तब रोगी के शरीर में स्थित पित्त भी प्रभावित होने लगता है। यह पित्त रोगी के ललाट आदि में स्थित कफ को धीरे–धीरे सुखाने लगता है। जैसे–जैसे कफ सूखता जाता है, वैसे–वैसे रोगी का सिरदर्द (शिरोवेदना) बढ़ता जाता है। दोपहर में 2 बजे के बाद यह वेदना कम होती जाती है, क्योंकि पित्त का वेग भी कम होने लग जाता है और रोगी फिर सिर में केवल भारीपन महसूस करता है। उसकी बेचैनी हट जाती है। जीर्ण होने पर यह रोग ललाट में परत की तरह जम जाता है।

इस तरह यह रोग बहुत ही कष्टप्रद है। किंतु जितना यह कष्टप्रद है, उतनी ही आयुर्वेद ने इसकी चिकित्सा सरल बना दी है। क्योंकि आयुर्वेद ने इसके कारण का पता लगा लिया है और उस कारण के उत्पन्न होने से पहले ही दवा का सेवन करा देता है। इसलिये एक–दो दिन में ही इस रोग से मुक्ति मिल जाती है। औषध कुछ दिन चलाते रहना चाहिये।

औषध– आयुर्वेद कारण का पता लगाकर, उस कारणको प्रभाव हीन करनेके लिये प्रशान्त महासागर में सूर्योदय होने से पहले ही अर्थात् भारत में सूर्योदय होने से लगभग 2–3 घंटे पहले ही औषध का सेवन करा देता है। विधि यह है –

एक छटाँक जलेबी को रात को ही दूध में भिगोकर सुरक्षित रख दें। लगभग तीन बजे गोदन्ती भस्म – 1 ग्राम एवं शोधित नरसारचूर्ण–आधा ग्राम फाँककर इस दूध–जलेबी को खाकर भरपेट पानी पी लेना चाहिये। औषध के इस सेवन से, सूर्यावर्तन से जो पित्त प्रकुपित होता था, वह नहीं हो पायेगा और कफ पिघलकर तीन–चार दिनों में नाक से निकल जायगा। कभी–कभी खून भी निकलता है, उसे देखकर रोगी घबराये नहीं, क्योंकि वह दूषित अवरुद्ध खून है, इसका निकलनाही श्रेयस्कर है। कम–से–कम 41 दिनतक यह औषध चलाना चाहिये। 41 दिनके बाद कुछ दिनों तक आधा किलो पानी, चीनी मिलाकर हलका–हलका गरम, पीते रहना चाहिये। इस विधि से यह रोग 4–5 दिनों के बाद ही प्रभावहीन हो जाता है, किंतु लेयर

(परत) की तरह ललाट में चिपके हुए कफ को निकालने के लिये आवश्यकतानुसार 21 या 41 दिनों तक दूध–जलेबी का सेवन करना चाहिये। रोगी को फिर कभी यदि जुकाम हो जाये तो रात को तीन बजे पानी में चीनी डालकर भरपेट पी लेना चाहिये, ताकि वह पित्त फिर जाग न जाय।

यदि षड्विन्दु तेल को नाक में छः–छः बूँद डालें तब इस रोग से जीवन–भर के लिए छुटकारा मिल जाता है। यह तेल इतना उत्तम है कि नाक में डालने और सिर में लगाने से कंठ के ऊपर के सम्पूर्ण रोग समाप्त हो जाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी इस तेल का सेवन कर सकता है। कान, आँख, नाक के एवं सिर के बाल गिरना तथा सफेद होना आदि उपद्रवों से यह बचाकर रखता है। साइनस के रोगियों को 4 वर्षों तक नाक में इसको अवश्य डालते रहना चाहिए। यह साइनस रोग भी आज असाध्य ही है। शिल्यकर्म के बाद भी नहीं जाता है।

2–पथरी

पथर का रोग आज आम बात हो गयी है। साठ– सत्तर वर्ष पहले भोजनमें कुलथी की दाल खायी जाती थी। बाजार में मिलती थी। किंतु इधर लोगों ने उसको खाना बंद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज पथरीका रोग वेगसे बढ़ रहा है। यदि कुलथी का पानी पिया जाये तब इस पथरी को या तो निकाला जा सकता है या गलाया जा सकता है। मूत्रवहा नाडी का पत्थर शीघ्र ही निकल जाता है।यदि यह वृक्क में हो तो देर लगती है क्योंकि वहाँ से निकाला नहीं जा सकता। हाँ, गलाया जा सकता है। दोनों स्थितियों में शल्यकर्म की आवश्यकता नहीं रहती। कुलथी अपने प्रभाव से उस रोगको जड़मूल से साफ कर देती है।

औषध एवं उसके सेवन की विधि इस प्रकार है–

(1) हजरल जहूर भस्म–3 ग्राम, (2) श्वेतपर्पटी–3 ग्राम, (3) पाषाणभेद–3 ग्राम, (4) चन्द्रप्रभावटी–4 ग्राम।

इन सबकी 21 पुड़िया बनायें। सुबह–शाम एक–एक पुड़िया निम्नलिखित काढ़े से लें–

काढ़ा– (1) कुलथी(या दाल)–100 ग्राम, (2) वरुण (वरुणा) की छाल–15 ग्राम, (3) गदहपूर्णाकी जड़–10 ग्राम, (4) छोटी गोखरू–6 ग्राम, (5) बड़ी गोखरू–6 ग्राम, (6) भिंडी का बीज–3 ग्राम, (7) पानी–500 ग्राम (आधा किलो)।

इन सबको जौकूट (जौ के बराबर) चूर्ण कर लें। काढ़े की दवाओं को बहुत महीन न करें। जौकूट–चूर्ण को आधा किलो पानी में रात में भिगो दें। सबेरे धीमी आँचपर काढ़ा बनायें। शेष 100 ग्राम रहने पर उतार लें। 50 ग्राम काढ़ा सुबह एक पुड़िया खाकर पी लें।

पथ्य–नेनुवा, लौकी, परवल, पपीता, करेला आदि सब्जियों को हल्के तेल में जीरे से छौंककर धनिया, हल्दी, काली मिर्च–इन मसालोंको खाया जा सकता है। गरम मसाला न लें।

अपथ्य– कैल्सियम की वस्तुएँ जैसे दूध और रत्नों का भस्म एवं टमाटर न लें।

सूचना–यदि यूरेटर में बड़ा पत्थर होता है तो इन दवाओं के निकलते समय दर्द महसूस होता है, इस दर्द को शुभ लक्षण समझना चाहिए। क्योंकि पत्थर अपने स्थान से हटकर पेशाब के रास्ते निकलना चाह रहा है। ऐसी स्थितियें बार–बार पानी पीना चाहिये। इससे उसके निकलने में सुविधा होती है। यदि पथरी छोटी होती है तो तकलीफ नहीं होती, आसानी से निकल जाती है। बड़ी पथरी निकलने के बाद देखने में मांस का टुकड़ा लगता है। क्योंकि मांस को काटते हुए बाहर निकलता है, उसे रख दिया जाय तो बारह घंटे बाद वह पत्थर नजर आने लगता है। इस पत्थरका रंग हजरल जहूर पत्थरकी तरह नीलाभ होता है।

नमस्ते

-इन्द्रजीत देव, हरियाणा

सन् 1933 में स्वर्गीय श्री पं. प्रकाशचन्द्र आर्य कवि जी आसनसोल (बंगाल) में आर्य समाज के उत्सव पर गए थे। वहाँ पर पौराणिकों ने यह कहकर लोगों को आर्यों के उत्सव में जाने से रोका कि आर्यजन परस्पर अभिवादन 'नमस्ते' कहकर करते हैं। इसके प्रचार से तुम्हारा नाश हो जाएग

''नमस्ते नाश कर देगी फिरोगे दाने–दाने को।
जन्म भंगी के घर होगा मिलेगी जूठ खाने को।''

ये पंक्तियाँ लिखकर पौराणिक पण्डितों ने पं० प्रकाश कवि जी को भेजी। पण्डित जी ने उसी उत्सव में इसका उत्तर लिख डाला व वहीं सुना दिया जो इस प्रकार है–

एक दिन पोप का लड़का लगा यूँ दुःख सुनाने को।
पिता जी अब नहीं मिलता हमें कोई फंसाने को।।
कनागत में मिले भी खूब पूड़ी खीर खाने को।
ग्रहों का जय सदा करते थे सबका दुःख मिटाने को।।
हमीं से जप कराते थे फतह दुश्मन पै पाने को।
रसीदें सबको देते थे हमीं बैकुण्ठ जाने को।।
वही यजमान अब हम पोप लोगों के चिढ़ाने को।
नमस्ते खूब करते हैं सदा हमको जलाने को।।
यों कहते हैं यहाँ आए हो क्यों सूरत दिखने को।
तुम्हारी पोल–पट्टी में न अब हम लोग आने को।।
बता रखा था तुमने धर्म बस चौके में खाने को।
बजाते शंख और घड़ियाल थे प्रभु के जगाने को।।
अनेकों ढंग निकाले थे हमारे लुटवाने को।
बताते थे न कोई राह बिछुड़ों को मिलाने को।।
खुले रहते थे विधवाओं को सदा वैश्या बनाने को।
खुशामद करते थे गैरों की अपनी जाँ बचाने को।।
मगर हम खूब पक्के थे अछूतों को दबाने को।
समझते खेल अब भी तुम अछूतों को सताने को।।
वे रोते हैं नहीं तैयार तुम छाती लगाने को।
दुःखी हैं आज वे कितने इसी को आजमाने को।।
जन्म भंगी के घर होना मिलेगी जूठ खाने को।
कहाँ से आ गया स्वामी पिता हमको मिटाने को।।
हमारी पोल अरु चालें बता दी सब जमाने को।
हमारे पोप दल के नाश करने की डराने को।।
नमस्ते क्यों सिखादी हाय मिट्टी में मिलाने को।
नहीं मिलने का अब हर्गिज चरस का दम लगाने को।।
शराब आफीम गांजा भांग का लोटा चढ़ान को ।
मिलेगा अब नहीं बिलकुल पराया माल खाने को।।
मिलेगा अब नहीं कोई हमें चेला बनाने को।
उन्हीं आर्यों के कारण से न मिलता हाय खाने को।।
नमस्ते है जगत् में वेदों का डंका बजाने को।
नमस्ते है कपट पाखण्ड पन्थों को हटाने को।।
नमस्ते हैं संजीवनी शक्ति मृतकों को जिलाने को।
नमस्ते अग्नि है अज्ञान का कर्कट जलाने को।।
नमस्ते तोप है खल पोप–दल के दुर्ग ढ़हाने को।
नमस्ते है सुदर्शन चक्र असुरों के मिटाने को।।
नमस्ते ने किया चेतन–चतुर उन भोले भालों को।
जो समझे थे धर्म धन–माल पोपों के जिलाने को।।
चिढ़े बैठे हैं कितने पोप इस कारण नमस्ते से।
न मिलते अब उन्हें लड्डू कचौरी खीर खाने को।।
यूँ कहते पोप जी रो–रो के अपने बाल–बच्चों को।
करो अब बन्द जल्दी से नमस्ते के तराने को।।
बनेंगे आर्य नर–नारी खुलेगी पोप फिर सारी।
नमस्ते नाश कर देगी फिरो को दाने–दाने को।।

प्रार्थना

–वेदरत्न पं० रामप्रसाद वेदालंकार

ओ३म् न किइन्द्रत्वदुत्तरं न ज्यायोअस्ति वृत्रहन्।

न क्येवं यथात्वम्।। साम0 203

अन्वयः– इन्द्र!त्वत् उत्तरं न कि।

वृत्रहन् ! ज्याय नअस्ति, न कि एवं यथात्वम्।

अन्वयार्थः– (इन्द्र!) हे परमेश्वर्य सम्पन्न प्रभो! (त्वत् उत्तरं न कि) तुझसे उत्कृष्ट कोई नहीं। (वृत्रहन्!) हे अविद्यान्धकार का उन्मूलन करने वाले प्यारे परमेश्वर! (ज्यायःन कि अस्ति) तुझसे ज्येष्ठ भी कोई नहीं है, बड़ा भी कोई नहीं है। हे वृत्र नाशक जगत्सम्राट प्रभुवर! (न कि एवम्) नहीं कोई ऐसा है (यथा त्वम्) जैसे कि तुम हो।

हे जगदाधार परमात्मन्! तुझसे बढ़कर कोई नहीं है, तुझसे उत्कृष्ट कोई नहीं है तुझसे आगे कोई नहीं है। सूक्ष्मता की दृष्टि से देखें तो, ज्ञान की दृष्टि से देखें तो, बल की दृष्टि से देखें तो, कर्म की दृष्टि से देखें तो, अधिकार की दृष्टि से देखें तो, व्यवस्था की दृष्टि से देखें तो, न्याय की दृष्टि से देखें तो, दान की दृष्टि से देखें तो, स्नेह की दृष्टि से देखें तो, हित की दृष्टि से देखें तो, उपकार की दृष्टि से देखें तो, तात्पर्य यह है कि सभी दृष्टि से तू ही सब से उत्तर है, उत्कृष्टतर है, बढ़कर है। किसी भी दृष्टि से कोई भी तुझसे बढ़कर नहीं, कोई भी तुझ से उत्कृष्टतर नहीं, कोई भी तुझसे सूक्ष्मतर नहीं।

हे अविद्यान्धकार के विनाशक और विद्या विज्ञान के प्रकाशक परमेश्वर! तुझसे ज्येष्ठ भी कोई नहीं है और श्रेष्ठ भी कोई नहीं है, तुझसे बड़ा भी कोई नहीं है और महान् भी कोई नहीं है। तू ही सबसे सब प्रकार से ज्येष्ठ है और श्रेष्ठ है, तू ही सबसे सब प्रकार से बड़ा और महान है। वह ज्येष्ठता, श्रेष्ठता और महानता चाहे ज्ञान की दृष्टि से हो, अनुभव की दृष्टि से हो, कर्म की दृष्टि से हो, पद की दृष्टि से हो, न्याय की दृष्टि से हो, व्यवस्था की दृष्टि से हो, प्रभाव की दृष्टि से हो, व्यापकता की दृष्टि से हो वा अन्य गुणों की दृष्टि से हो।

हे अज्ञान और अन्याय का संहार करने वाले प्यारे इस ब्रह्माण्ड में, कोई ऐसा भी नहीं है जैसे कि तुम हो। अर्थात जितने तुम महान् हो, जितने तुम उदार हो जितने तुम अनुभवी हो, जितने तुम ज्ञानी हो, जितने तुम तेजोमय हो, जितने तुम बलवान् हो जितने तुम कर्मठ हो, जितने तुम न्यायकारी हो जितने तुम व्यवस्थापक हो, जितने तुम पालक पोषक हो, जितने तुम धीर हो, जितने तुम वीर हो, जितने तुम गम्भीर हो इत्यादि, ऐसा भी कोई नहीं है। अब जब कोई तेरे तुल्य, तेरे बराबर ही नहीं है तो तुझसे बढ़कर भला कौन हो सकता है, तुझसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? इसलिए हे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ ईश्वर! हे जगदाधार परमेश्वर! विघ्ननाशक सर्वेश्वर! मैं तेरी शरण में आया हूँ ताकि तेरे सम्पर्क से मैं भी कुछ बन सकूँ, कुछ उन्नत हो सकूँ, कुछ ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बन सकूँ, कुछ महान् बन सकूँ। प्रभुवर! मेरी पुकार सुनो और मुझे अपने जैसा बनाकर खड़ा करो, जहाँ तक भी सम्भव हो सके। यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्।।

कितना भाग्यवान होगा वह व्यक्ति,
जिसका साथी बुद्धिमान हो,
उसको समझता हो, और उसके सब
अच्छे कार्यों में सहयोग देता हो।

किसकी नकल करनी चाहिए व किसकी नहीं यह जानना ही असली अक्लमंदी है

-सीताराम गुप्ता

पाश्चात्य विचारक एमर्सन ने कहा है कि ''इमिटेशन इज सूइसाइड'' अर्थात् अनुकरण आत्मघात के समान है। वैसे अनुकरण अथवा नकल करना बुरी बात नहीं क्योंकि यह एक स्वाभाविक क्रिया है। सीखने की प्रक्रिया में अनुकरण अथवा नकल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम केवल स्वयं के अनुभवों अथवा प्रयोगों के द्वारा कितना सीख पाएँगे? बहुत कम। आयुर्विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा अभियांत्रिकी का क्षेत्र सैद्धांतिक व तकनीकी ज्ञान के साथ–साथ इंटर्नशिप के महत्त्व को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यह भी एक प्रकार से अनुकरण द्वारा ही सीखने की प्रक्रिया है। अनुकरण अथवा नकल द्वारा हम आसानी से दूसरों के अनुभवों का लाभ उठाकर अधिकाधिक सीख सकते हैं लेकिन जीवन के हर क्षेत्र में नकल करना हमारे लिए अच्छा नहीं। अब परीक्षाओं को ही लीजिए। परीक्षाएँ जीवन की कसौटी होती हैं लेकिन ये हमारी बदकिस्मती ही कही जा सकती है कि आजकल परीक्षाओं के दौरान ही सबसे ज्यादा नकल करना आम बात हो गई है।

कमजोर विद्यार्थी पास होने के लिए तथा सामान्य विद्यार्थी अधिक अंक पाने के लिए नकल का सहारा लेने से नहीं चूकते। विद्यार्थी ही नहीं अन्य व्यक्ति भी नकल के मामले में उनसे कम नहीं। कोई किसी की दिनचर्या की नकल करने का प्रयास करता है तो कोई किसी की जीवन शैली की नकल करने का। कोई किसी के केश विन्यास की नकल कर रहा है तो कोई किसी के कपड़ों–जूतों की। अपराध, आतंक, भ्रष्टाचार व अनैतिक कार्यों में लिप्त लोग तो नकल के मामले में सबसे आगे पाए जाते हैं। मिर्जा 'गालिब' का एक शेर है–

हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे,
कहते हैं कि 'गालिब' का है अंदाजे–बयाँ और।

अर्थात् दुनिया में और भी कई बहुत अच्छे सुखनवर (कवि) हैं लेकिन लोग कहते हैं कि 'गालिब' का है अंदाजे–बया (वर्णन करने का तरीका अथवा शैली) और ही है। वह सबसे अलग है, अद्वितीय है। और यही अंदाजे–बयाँ अथवा बयान का अनोखापन मिर्जा 'गालिब' को उर्दू का सबसे बड़ा शायर बना देता है। हर व्यक्ति के अंदर एक सर्जक, एक कलाकार छुपा होता है लेकिन क्योंकि हम अपनी कलात्मकता को प्रकट करने अथवा अपने भावों को व्यक्त करने की अपनी व्यक्तिगत विशिष्ट शैली से अपरिचित होते हैं। अतः हम हमेशा ही सामान्य बने रहते हैं। हम अपनी व्यक्तिगत विशिष्ट शैली का विकास करने की बजाय दूसरे सफल व्यक्तियों की नकल करने का ही अधिक प्रयास करते रहते हैं। कई बार दूसरे सफल व्यक्तियों की नकल करने का प्रयास ही हमारे स्वाभाविक विकास में सबसे बड़ी बाधा बन जाता है।

प्रश्न उठता है कि नकल करना कहाँ तक उचित है? यह अच्छी बात है अथवा खराब? कम से कम परीक्षाओं में नकल करना तो खराब बात ही है। इसके बहुत ज्यादा नुकसान हैं। जब हम नकल करके पास होते हैं तो इसका सीधा सा अर्थ है कि हममें योग्यता नहीं आती और इसका परिणाम ये होता है कि जब हम वास्तविक जीवन में कर्म के क्षेत्र में उतरते हैं तो सफलता नहीं

मिलती। हमारा अज्ञान न केवल मानसिक रूप से परेशान करता रहता है अपितु व्यावहारिक रूप में भी बाधाएँ खड़ी करता रहता है। बार–बार लोगों से सुनने को मिलता है कि रिश्वत देकर पास हुए थे या नकल करके। उस समय मन में आता है कि काश हमने नकल करने की बजाय ठीक से पढ़ाई कर ली होती लेकिन अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

फिल्मी दुनिया का तो हर वर्ग पर गहरा असर देखने को मिलता है। वहाँ की हर चीज हमारे यहाँ घर कर रही है। वहाँ की रील लाइफ ही नहीं रीयल लाइफ भी हमारे सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाल रही है। इसके अच्छे और बुरे दोनो तरह के प्रभाव सोसाइटी पर पड़ रहे हैं लेकिन अच्छे कम और बुरे ज्यादा। फिल्मी दुनिया के नकल के प्रभाव से न केवल साहित्य, संस्कृति व कलाओं का घोर बाजारीकरण या व्यवसायीकरण हुआ है अपितु नैतिक मूल्यों, जीवन मूल्यों व संबंधों की गरिमा का भी ह्रास हुआ है। जहाँ फिल्मी दुनिया की नकल का दुष्प्रभाव नहीं है वहाँ हर क्षेत्र में मौलिकता देखी जा सकती है। जीवन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है मौलिकता। वास्तव में नकल मौलिकता की शत्रु है।

जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो मौलिकता का बड़ा महत्त्व है। मौलिकता में नवोन्मेष होता है, सर्जनात्मकता होती है। जीवन में उन्नति के लिए नवोन्मेष तथा सर्जनात्मकता दोनों ही अनिवार्य हैं। अनुकरण अथवा नकल नवोन्मेष तथा सर्जनात्मकता दोनों का ही गला घोंट देते हैं। मौलिकता का ये अर्थ भी नहीं कि हम नयेपन के नाम पर ऐसी ऊल–जलूल हरकतें करें जो हमें संकट में डाल दें अथवा जिनसे समाज व राष्ट्र कमजोर हो। वही मौलिकता ग्राह्य हो सकती है जिससे हमारे विकास के साथ–साथ हमारी संस्कृति और सभ्यता का विकास भी संभव हो सके। मौलिकता में एक आकर्षण होता है। हमारी फिल्म इंडस्ट्री में कितने कलाकार हैं जिन्होंने दिलीप कुमार, राजेश खन्ना, अमिताभ बच्चन अथवा अन्य महान कलाकारों की नकल करके फिल्म इंडस्ट्री में अपना स्थान बनाया है? शायद एक भी नहीं। जो लोग इनकी नकल करके दिखाते हैं वे लोगों का सस्ता मनोरंजन करने वाले दोयम दर्जे के मिमिक्री कलाकार ही होते हैं।

जो सचमुच महान कलाकार होते हैं वे अपनी नकल भी नहीं करते अपितु अपनी कला की शैली में वैविध्य उत्पन्न करने के प्रयास में लगे रहते हैं। जो दूसरों की नकल करते हैं उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता और न उनका अनुकरण अथवा अनुसरण ही करता है। मौलिकता में न केवल एक आकर्षण होता है अपितु उसका अनुकरण भी किया जाता है। यदि आपमें मौलिकता है तो लोग आपसे बात करेंगे, आपके बारे में जानना चाहेंगे। ये आपको भी अच्छा लगेगा कि लोग आप में रुचि ले रहे हैं। जो दूसरों के रहन–सहन, खानपान व कपड़ों–जूतों अथवा हेयर स्टाइल आदि की नकल करते हैं लोग उनको नकलची बंदर कहकर न केवल उनका मजाक उड़ाते हैं अपितु उनसे दूर भी रहने का प्रयास करते हैं। यह हमारे लिए सबसे दुख की बात होती है। यदि कोई हमारी उपेक्षा करता है अथवा हमारा मजाक उड़ाता है।

नकल करना अच्छी बात भी हो सकती है। यदि हम केवल अच्छी बातों की नकल करें। नकल ही करनी हो तो अच्छे लोगों की अच्छी बातों की नकल करनी चाहिए। यदि हमें वास्तव में सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलना है तो गाँधीजी की नकल करनी चाहिए जिसमें कोई बुराई नहीं। हर व्यक्ति, हर समाज व हर राष्ट्र में कुछ अच्छाइयाँ व कुछ बुराइयाँ होती हैं। नकल ही करनी है तो अच्छाइयों की कीजिए, बुराइयों की नहीं। अपने विरोधियों अथवा प्रतिद्वंद्वियों की भी अच्छाइयों की

नकल करना हमारे हित में होगा। नकल करने में ये महत्त्वपूर्ण नहीं कि किस व्यक्ति की नकल की जा रही है अपितु ये महत्त्वपूर्ण है कि किन आदतों, कुशलताओं, कला अथवा सिद्धांतों की नकल की जा रही है। नकल उन्नति के लिए हो बेईमानी अथवा दिखावे के लिए नहीं।

कहा गया है कि नकल के लिए भी अक्ल चाहिए। इसी में छुपा है नकल करने अथवा नकल न करने का पूरा दर्शन। सामान्यतः लोग इसका ये अर्थ निकालते हैं कि नकल, चीटिंग, पायरेसी अथवा बेईमानी के लिए अक्ल की जरूरत होती है। जो जितना अक्लमंद होता है वह उतनी ही अच्छी तरह से नकल, चीटिंग, पायरेसी अथवा बेईमानी करने में सक्षम होता है और लाभांवित भी। यह धारणा ही मिथ्या है। नकल के लिए भी अक्ल की जरूरत होती है इसका सीधा सा अर्थ है कि जो जितना अक्लमंद होता है वह उतनी ही अच्छी तरह से जानता है कि किसकी नकल करनी चाहिए और कितनी तथा किसकी नकल नहीं करनी चाहिए और क्यों नहीं करनी चाहिए। जिसमें ऐसा विवेक उत्पन्न हो जाता है वह सही व्यक्ति अथवा सिद्धांत की नकल करता है न कि चीटिंग, पायरेसी अथवा बेईमानी करता है। केवल अनुकरणीय का अनुकरण कीजिए और अपने जीवन को उन्नत बनाइए।

कवि की ओर से

– कवि वीरेन्द्र कुमार राजपूत

जिन लोगों ने दयानन्द के पथ को अपनाया है,
मन, मस्तिष्क, हृदय में जिनके दयानन्द छाया है।
'उनका काम करेंगे पूरा' जिनके मन भाया है,
बाधाओं में विचलित जिनको, रंच नहीं पाया है।।

पश्चिम का विज्ञान पढ़े थे, चकाचौंध छाई थी,
ऐसे में आँखें प्रभु–सत्ता, देख नहीं पाई थीं।
ऋषि–निर्वाण विलोका जब, तो मिटी भ्रांति–खाई थी,
बने आस्तिक शिष्य, भूमि भारत की हर्षाई थी।।

छिपा सूर्य पश्चिम में जब था, जाकर क्षितिज किनारे,
अंधियारे ने हर्षित होकर, जब थे पैर पसारे।
उस क्षण देने हेतु चुनौती, जो भू पर अवतारे,
उनकी प्रथम पंक्ति में हैं, पंड़ित गुरुदत्त हमारे।।

ऋषिवर उनको पिला गये थे, यों प्याले पर प्याला,
अपना होश भुला बैठे थे, पीते–पीते हाला।
'अति सर्वत्र वर्जयेत' का पाठ न मन बैठाला,
इस कारण छब्बीस वर्ष ही जिए, किया उजियाला।।

जन्मदिन पर यज्ञ करें

-स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, रोहतक, हरियाणा

''प्रायः लोग वर्ष में एक बार तो अपना जन्मदिन मनाते ही हैं, और बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं।''

कुछ मनमौजी धनवान लोग ऐसे भी होते हैं, जो वर्ष में अनेक बार अपना जन्मदिन मनाते हैं। ''उन्हें जन्मदिन मनाने से कोई अधिक प्रयोजन नहीं होता, उन्हें तो नाचने गाने खाने पीने का बहाना चाहिए। जिस दिन भी ऐसा मूड हो, बस वे घोषणा कर देते हैं, कि आज हमारा जन्मदिन है।'' वे अपने मित्रों साथियों को बुला लेते हैं, और अपने घर या होटल में खूब पार्टी बनाकर नाचते गाते खाते पीते हैं।'' यह तो हुई सेठों और धनवानों की बात।

अब हम सामान्य लोगों की बात करें। तो ''जो लोग प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन मनाते हैं, उनमें से भारत में भी अधिकांश लोग जन्मदिन के अवसर पर केक मंगाकर काटते और बांटते हैं।'' ''अनेक मनचले लोग तो केक की क्रीम को भी यजमान के मुंह पर बुरी तरह से मल देते हैं, यह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। जन्मदिन खुशी मनाने का अवसर है, उस दिन ऐसी बेहूदा हरकतें करके यजमान को (जिसका जन्मदिन है, उसे) परेशान नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे शुभकामनाएं और आशीर्वाद देकर उसकी प्रसन्नता और उत्साह को बढ़ाना चाहिए।''

और आजकल जो लोग जन्मदिन मनाते हैं, उनमें से अधिकांश लोग, भारतीय होते हुए भी विदेशी परंपरा के अनुसार जन्मदिन मनाते हैं। ''केक काटकर बांटते हैं। यह विदेशी परंपरा है।'' ''जिनका जन्म इंग्लैंड आदि विदेश में हुआ हो, और वे उसी परंपरा में पले बड़े हुए हों, तो मान भी सकते हैं, कि वे केक काटकर अपनी परंपरा के अनुसार अपना जन्मदिन मना रहे हैं।'' ''परंतु जिन लोगों का जन्म भारत देश में हुआ है, उन्हें तो कम से कम भारतीय परंपरा से अपना जन्मदिन मनाना चाहिए।''

''भारतीय परंपरा में जन्मदिन के अवसर पर यज्ञ किया जाता है। एक दोष छोड़ने का और एक गुण को धारण करने का संकल्प लिया जाता है।'' ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि इस दिन व्यक्ति को यह सोचना चाहिए, कि ''मेरा जन्म संसार में क्यों हुआ? मैं इस संसार में क्यों आया हूं? मेरे जीवन का मुख्य लक्ष्य क्या है?'' फिर गंभीरता से विचार करने पर उसे उत्तर यह मिलता है, कि ''मुझे सब दुखों से छूटना है। इस जन्म मरण चक्र से छूटना है। यही मेरे जन्म लेने का मुख्य लक्ष्य है।'' इस लक्ष्य की प्राप्ति का उपाय यह है, कि ''सब दोषों को छोड़कर, सब उत्तम उत्तम गुणों को धारण करना।'' तो ''मैं अपने मुख्य लक्ष्य की ओर आगे बढ़ूं,' ऐसी भावना लेकर यज्ञ करके, कम से कम किसी एक दोष को छोड़ने तथा एक गुण को धारण करने का संकल्प लेना चाहिए।'' ''तभी व्यक्ति अपने जीवन के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, इसके बिना नहीं।'' और इस अवसर पर मिल बैठकर हंसना गाना खाना–पीना भी चाहिए, इसका कोई निषेध नहीं है।

ऐसे जन्मदिन के अवसर पर भारतीय मिठाई लड्डू बांटना चाहिए। ''भारतीय मिठाइयों में सबसे पहली मिठाई लड्डू है। क्योंकि जब भी कोई किसी को शिकायत करता है, कि ''आपने शादी तो कर ली, परन्तु लड्डू तो खिलाए नहीं। आप कक्षा में प्रथम आए, परंतु लड्डू तो खिलाए नहीं।'' कोई यूं नहीं कहता, कि ''आपने गुलाब जामुन तो खिलाए नहीं। रसगुल्ले तो खिलाए नहीं।'' ''इससे पता चलता है कि भारतीय मिठाइयों में पहला नंबर लड्डू का है।''

''लड्डू, बूंदी के दानों को संगठित करके बनाया जाता है। इसलिए यह संगठन का भी संदेश देता है। संगठित रहो, तो आप सुखी रहेंगे, सुरक्षित रहेंगे। इस प्रकार से जन्म दिवस के अवसर पर केक के स्थान पर लड्डू बांटना खाना खिलाना अधिक उचित है।''

''केक काटना तो विभाजन का संदेश देता है। इससे परस्पर संगठन नहीं होता, बल्कि विभाजन या विघटन का संदेश मिलता है।'' ''इसलिए कम से कम भारतीय लोग तो लड्डू ही बांटें, खाएं, खिलाएं, और संगठित रहें, जिससे कि उनका भविष्य उत्तम एवं सुखदायक बने।''

जीवन की उन्नति के लिये वेद और सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय करें

-मनमोहन कुमार आर्य

मनुष्य जीवन दुःखों को दूर करने और सुखपूर्वक स्वहित व परहित के कार्य करने के लिये परमात्मा से मिला है। मनुष्य जीवन में हम अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का भोग करते हैं और नये शुभ व अशुभ कर्म भी करते हैं। पूर्व कर्मों का भोग तो हमें अवश्यमेव करना ही है, इससे हम बच नहीं सकते। इसे इस प्रकार से समझ सकते हैं कि हमने जो कर्म कर रखे हैं उसका पुरस्कार व दण्ड तो हमें ईश्वरीय व्यवस्था से भोगना ही होगा। ईश्वर न्यायकारी व सभी जीवों का राजा है। वह हमारे प्रत्येक कर्म का साक्षी होता है और हमें उसका फल सुख व दुःख के रूप में देता है। हमारे पास वर्तमान व भविष्य में करने के लिये शुभ व अशुभ कर्म ही हैं। सत्य, शुभ व पुण्य कर्मों का परिणाम सुख तथा असत्य, अशुभ व पाप कर्मों का परिणाम दुःख है। जो सत्य है वही पुण्य और जो असत्य कर्म है वही पाप कर्म हैं। कर्मों के स्वरूप व परिणाम को जानने के लिये हमें ईश्वरीय ज्ञान वेद सहित ऋषि–मुनियों के वेदों पर आधारित ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। स्वाध्याय करना हमारे लिये आवश्यक एवं लाभदायक है। यदि हम स्वाध्याय नहीं करेंगे तो हमें अपने कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होगा। आज के संसार ने कल्पनातीत भौतिक उन्नति की है परन्तु स्वाध्याय न करने के कारण हमारे वैज्ञानिक व अन्य सभी ज्ञानीजन ईश्वर व जीवात्मा के ज्ञान तथा अपने कर्तव्य–कर्मों से अनभिज्ञ है। स्वाध्याय में प्रमुख ग्रन्थ तो वेद हैं। इसके साथ हमें वेदों पर आधारित सत्यासत्य का ज्ञान कराने वाले अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय भी नित्य करना चाहिये। इससे हमारा आध्यात्म व भौतिक जगत् से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान हो सकेगा और हम दोनों का सदुपयोग करके अपने जीवन को दुःखों से पृथक व सुखों से युक्त कर सकेंगे।

स्वाध्याय अपनी आत्मा और अपने मनुष्य जीवन को जानने को भी कहते हैं। आत्म चिन्तन करना और आत्मा की उन्नति के उपाय सोचना व उन्हें करना भी स्वाध्याय में ही आता है। आत्म चिन्तन में वेदों का ज्ञान सहायक होता है। अतः सभी मनुष्यों को वेदों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। वेदों के स्वाध्याय की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ऋषि दयानन्द ने वेदों का हिन्दी भाषा में भाष्य किया है। उनके वेदभाष्य से हम वेद के मन्त्रों का हिन्दी में अर्थ जान सकते हैं। स्वामी दयानन्द जी के वेदभाष्य की विशेषता यह है कि उन्होंने वेदमन्त्रों के सभी पदों व शब्दों के अर्थ अपने वेदभाष्य में दिये हैं और पदार्थ व शब्दार्थ देने के साथ मन्त्र का भावार्थ भी समझाया है। उनकी शिष्य परम्परा के विद्वानों ने भी उनकी वेदभाष्य पद्धति का अनुकरण किया है। इसे पढ़कर हम ईश्वर के मनुष्यों के हित के दिये गये वेद–ज्ञान को जान व समझकर ईश्वरीय इच्छा के अनुसार वेद निर्दिष्ट कर्तत्यों का पालन करते हुए हम अपने जीवन को सफल कर सकते है।

वेदों के स्वाध्याय के बाद हमें वर्तमान समय में सर्वाधिक लाभ ऋषि दयानन्द जी के सत्यार्थप्रकाश व अन्य ग्रन्थों को पढ़ने से होता है। हम सत्य व असत्य को जानने में सफल होते हैं। सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग ही मनुष्य का कर्तव्य है। यदि हम सत्यार्थप्रकाश नहीं पढ़ेगे तो हमें सत्यासत्य का ज्ञान नहीं होगा। इससे हम सत्य को प्राप्त न होने से अपने कर्तव्यों का पालन

नहीं कर सकते। मनुष्य को ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ ज्ञान सहित अपने प्रमुख कर्तव्य ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र–यज्ञ, मातृ–पितृ की नित्य सेवा, अतिथि सत्कार करने सहित सृष्टि के पशु पक्षियों आदि के प्रति दया व करूणा का भाव रखना चाहिये। इन्हें करके हमारे सद्कर्मों में वृद्धि होगी जिससे हमें सुख अधिक मात्रा में प्राप्त होंगे। वेद आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय के साथ हमें योगदर्शन का भी अध्ययन करना चाहियें। इस अध्ययन से हम अपनी आत्मा व परमात्मा को अच्छी प्रकार से जान सकेंगे जो हमारे शरीर स्वस्थ एवं दीघार्य करने सहित हमें ईश्वर को प्राप्त करने व ईश्वर साक्षात्कार करने भी सहायक होगा।

आत्मा चेतन सत्ता है। ज्ञान व कर्म ही इसके स्वभाविक कर्म हैं। मनुष्य जितना अधिक सत्य ज्ञान प्राप्त करता है उसका आचरण करता है, उतना ही वह सुखी होता है। परमात्मा ने मनुष्य की आवश्यकतायें बहुत ही कम बनाई हैं। हमें दो समय भोजन चाहिये। कुछ वस्त्र चाहिये। एक घर चाहिये जहां हम नित्य कर्म अर्थात् पंचमहायज्ञ कर सकें। हमें एक निवास गृह भी चाहिये जिससे हमारे सभी नित्य कर्म व व्यवहार हो सकें। हमें कुछ धन भी चाहिये जिससे हमारी आवश्यकतायें पूरी हो सकें। इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति करना बुरा नहीं है। हम इसके साथ यदि एषणाओ ंव लोभ आदि में फंसते हैं तो इससे हमारा पतन होता है। हमारा स्वाध्याय व ईश्वरोपासना आदि कर्म गौण हो जाते हैं, वह मुख्य नहीं रहते। इसी कारण योगदर्शन में यम व नियमों को प्रथम स्थान दिया गया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यम हैं और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर–प्रणिधान नियम हैं। इसके बाद आसन व प्राणायाम आते हैं। हमें इन चारों को अपने जीवन में महत्व देना चाहिये। हम इन्हें जितना महत्व देंगे उतनी ही हमारी आध्यात्मिक व भौतिक प्रगति होगी। वर्तमान में लोग भौतिक प्रगति के मोह व लोभ में फंस कर आध्यात्मिक उन्नति की उपेक्षा कर रहे हैं जिससे उनका यह जीवन व परजन्म दोनों बिगड़ रहा है। हमें इस पर विवेक बुद्धि से निर्णय कर उसका अनुसरण करना चाहिये।

स्वाध्याय हमें भौतिक उन्नति के साथ ईश्वर की प्राप्ति भी करा सकता है। सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय करने से हमें कुछ घंटो व दिनों में ही जीवात्मा व ईश्वर का सत्य स्वरूप विदित हो जाता है। इसे हम आंशिक आत्म दर्शन व ईश्वर दर्शन कह सकते हैं। इस क्रम में योगदर्शन के अनुसार साधना कर हम ईश्वर के निकट पहुंचना आरम्भ हो जाते हैं। ईश्वर प्राप्ति में ईश्वर, आत्मा और प्रकृति के ज्ञान सहित साधना का महत्व निर्विवाद है। बिना साधना के ईश्वर को जाना तो जा सकता है परन्तु उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार वैज्ञानिक पुस्तक पढ़ कर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और उसके बाद उसका प्रयोगशाला में प्रयोग कर वह सिद्धि करते हैं। प्रयोग से सिद्ध ज्ञान प्रामाणिक होता है। कुछ ऐसा ही हमें भी साधना के द्वारा करना है। साधना का अर्थ है कि आत्मा को सत्कर्मों से पवित्र बनाकर ध्यान व चिन्तन से समाधि को प्राप्त करना। यह कितने समय बाद प्राप्त होगी, यह कहा नहीं जा सकता। स्वामी दयानन्द जी को समाधि प्राप्त थी। वह प्रतिदिन इसका अनुभव व आनन्द लेते थे। अतः समाधि प्राप्त करना कठिन हो सकता है असम्भव नहीं। हमें ध्यान व समाधि के लिये साधना तो करनी ही चाहिये। हम जितना, कम व अधिक, प्रयत्न करेंगे हमें उससे लाभ ही होगा।

स्वाध्याय मनुष्य को मनुष्य बनाने के साथ साथ विवेकशील भी बनाता है। इससे अनेक अन्य लाभ भी होते हैं। हमें नियमित स्वाध्याय का व्रत लेकर अपना व समाज का कल्याण करने का प्रयत्न करना चाहिये।

उचित दण्ड व्यवस्था से ही शान्ति सम्भव

-स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, रोहतक, हरियाणा

''संसार के अज्ञानी लोग ईश्वर को नहीं जानते, नहीं समझते, यह उनकी कमी है। परन्तु बुद्धिमान लोग ईश्वर को जानते और समझते हैं, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है। यदि वह चाहे, तो कभी भी कुछ भी कर सकता है। परंतु ईश्वर सर्वशक्तिमान होने के साथ ही साथ न्यायकारी भी है। न्यायकारी होने के कारण, वह सदा न्याय ही करता है, अन्याय कभी नहीं करता, अपनी मनमानी नहीं करता। इसलिए एक झटके में लोगों को पराधीन करके संसार का सुधार नहीं करता। वह सदा न्याय नियमों का पालन करता है।''

संसार के बुद्धिमान लोग यह भी जानते हैं, कि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होने से, इस बात को अच्छी प्रकार से जानता है, कि संसार के लोगों की समस्याएं क्या हैं और उनका सही समाधान क्या है? ''ईश्वर सदा सही समाधान करता है। वह जानता है, कि संसार में बहुत से अपराधी लोग हैं। वे अपनी अविद्या व मूर्खता और स्वार्थ के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के छोटे बड़े अपराध करते हैं, तथा संसार के प्राणियों को दुख देते हैं। इनका सुधार कैसे होगा?'' ईश्वर सुधार के उस उपाय का प्रयोग भी खुलकर करता है। ''अपराधियों के सुधार का उपाय है, उनको न्याय पूर्वक उचित दंड देना।'' इसलिए ईश्वर ने संसार में कर्म फल व्यवस्था को स्थापित किया है।

''संसार में लाखों प्रकार के जीव जंतु हैं। यह सब ईश्वर की कर्म फल व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप है।'' मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। ईश्वर ने उसको बुद्धि हाथ पांव वाणी वेदों का ज्ञान कर्म करने की स्वतंत्रता इत्यादि सब साधन दिए हैं, और साथ ही वेदों में संविधान भी बताया है, कि ''हे मनुष्यो! आप लोग अच्छे कर्म करो। दूसरों की सहायता करो। समाधि लगाओ और मोक्ष में जाओ। पाप कर्म मत करो। संसार में बार–बार जन्म लेकर दुख मत भोगो। बल्कि अपने ज्ञान कर्म उपासना को शुद्ध करके अविद्या राग द्वेष काम क्रोध लोभ अभिमान अन्याय अत्याचार आदि शत्रुओं का विनाश करके जन्म मरण से छूट कर मोक्ष को प्राप्त करो, और मेरा आनंद भोगो।''

अब बुद्धिमान लोग तो ईश्वर के इस सुझाव संदेश संविधान को समझते हैं, और अच्छे काम करते हैं, बुरे काम नहीं करते। वे अच्छी प्रकार से जानते हैं कि ''ईश्वर न्यायकारी है', वह दंड दिए बिना छोड़ेगा नहीं। जैसे छूने पर बिजली की तार करंट मारे बिना नहीं छोड़ती।''

अब यदि यह बात सब लोगों को समझ में आ जाती, तो संसार में कोई भी व्यक्ति दुष्टता नहीं करता, और बहुत जल्दी ही संसार का सुधार हो जाता। ''जैसे यह बात सबको समझ में आ गई, कि यदि बिजली की तार को एक बार गलती से भी छू दिया, तो वह करंट मारे बिना नहीं छोड़ेगी। इसलिए बिजली की तार को कोई भी व्यक्ति जानबूझकर नहीं छूता।''

परन्तु अज्ञानी और स्वार्थी लोग अपनी मूर्खता एवं स्वार्थ के कारण ईश्वर की न्याय व्यवस्था को समझते नहीं, और भिन्न भिन्न प्रकार के अपराध करते रहते हैं। ''अतः ईश्वर उन्हें पशु पक्षी कीड़ा मकोड़ा वृक्ष वनस्पति इत्यादि योनियों में दंड देकर उनका सुधार करता है। यदि दंड के बिना कोई दूसरा उपाय होता, तो ईश्वर स्वयं भी उसी उपाय का उपयोग करता, और यह दंड व्यवस्था हटा लेता।'' परन्तु ईश्वर अच्छी प्रकार से जानता है, कि ''दंड के बिना कोई सुधरता नहीं है।'' इसीलिए वेदो में ईश्वर ने राजाओं के लिए भी यह आदेश निर्देश किया है, कि ''अपराधियों को उचित न्यायपूर्वक दंडित करो, तभी उनका सुधार होगा।''

आज इस बात का प्रत्यक्ष आप सभी देशों में कर सकते हैं, कि ''जहां जहां उचित दंड व्यवस्था है, वहां वहां अपराध बहुत कम और नियंत्रण में है। और जहां जहां दंड व्यवस्था असफल है, वहां वहां अपराध अत्यधिक मात्रा में और अनियंत्रित है।'' अतः अपराधियों को सुधारने के लिए उन्हें न्यायपूर्वक दंडित अवश्य ही करना चाहिए। ''अपराधी को न तो अन्यायपूर्वक मात्रा से अधिक दंड देना चाहिए, और न ही दंड दिए बिना अपराधी को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना अन्याय है।'' अन्याय करने से अपराधी का सुधार नहीं होता। '''यदि संसार में इस प्रकार से दंड व्यवस्था को ठीक कर दिया जाए, तो निश्चित रूप से अपराधियों का सुधार संभव है, और तभी संसार में सुख शांति की स्थापना हो सकती है, अन्यथा नहीं।''

धर्म का दसवां लक्षणः-आक्रोध

बहुत से लोग अपनी असहन–शीलता, अहंकार या मिथ्या–अभिमान के कारण क्रोध करते हैं। सामान्यतः वो यह सोच लेते हैं कि उनके जीवन व्यवहार में बिना क्रोध के कुछ भी कार्य संभव या सम्पन्न नहीं हो सकता अतः क्रोध करने की आवश्यकता तो रहती ही है। परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। हम बिना क्रोध किये भी प्रेम पूर्वक अधिकतर कार्यो को सम्पन्न कर सकते हैं।

ध्यान रहे विवेक पूर्ण निर्णय कभी भी कोई भी क्रोधित अवस्था में नहीं ले सकता है और विवेक पूर्ण विचार करें बिना लिए गये निर्णय अधिकतर हानिकारक सिद्ध होते हैं।

सत्यार्थ वाणी

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा–कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों–उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना भी दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

–स्वामी दयानन्द सरस्वती

भर्तृहरि उवाच

निन्दतु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

''संसार के नीति–निपुण व्यक्ति चाहे निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें, संसार का धनैश्वर्य चाहे आवे, चाहे सर्वथा चला जाय, मृत्यु चाहे आज हो जाय, चाहे युगों तक जीवन रह जावे, किन्तु धीर सत्यप्रेमी लोग धर्म के मार्ग से एक पग भी इधर–उधर विचलित नहीं होते।''

– भर्तृहरि

उपनिषद् वचन

''आदित्य उदयन् यत् प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते। यद्दक्षिणां यत् प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो–यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत् सर्वं प्रकाशचति तेन सर्वान् प्रणान् रश्मिषु सन्निधत्ते।।''

''सूर्य उदित होते ही अपनी किरणों से समस्त दिशाओं और ऊपर–नीचे सब स्थानों के प्राणवायु को खींच लेता है। यही कारण है कि सूर्योदय से पूर्व उठनेवाले जिस स्फूर्ति व ताजगी का अनुभव करते हैं, वह देर से उठने वालों को प्राप्त नहीं होती और उन्हें आलस्य घेरे रहता है। अतः निद्रा के विषय में भी पशु–पक्षी मनुष्य से अच्छे हैं, समान नहीं।''

–प्रश्नोपनिषद् 1–6–7

सामान्य ज्ञान विज्ञान

1. जब तक मनुष्य अपने कल्याण के लिए स्वयं सोचेगा, समझेगा, मानेगा और उसी के अनुसार चलेगा नहीं, तब तक साक्षात् ब्रह्मा भी आ जाएं तो उसका कुछ भी नहीं बना सकते।

2. ये शरीर अपूर्ण है, इसके भोग अपूर्ण हैं, यह संसार अपूर्ण है, इस अपूर्ण शरीर और अपूर्ण संसार में पूर्णताई की खोज करना मूर्खता है। यह बात तू आज समझ ले, दस वर्ष बाद समझ लेना या चार जन्म बाद समझा लेना, आखिर यह समझना पड़ेगा। क्यों अपने सफर को लम्बा करता है। उठ, जाग और अपने कल्याण के मार्ग पर बढ़ चल।

3. निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसबंध (दस प्रतिशत) धर्ममार्ग में व्यय करना आवश्यक है। अधिक बचत हो तो पांचवा भाग तक भी धर्ममार्ग में व्यय करना चाहिए। दर्शबंध का अपने खर्च में प्रयोग करना हानि देने वाला है।

4. यूनान के महान दार्शनिक पायथागोरस का अटूट विश्वास था कि जब तक हम में प्राणियों के प्रति करूणा की भावना नहीं है, जब तक हम मांसाहार करते हैं, तब तक हमारे मस्तिष्क का सात्विक विकास असम्भव है। समस्त ऋषि मुनियों, संतों, महात्माओं ने भी मांसाहार को कुकर्म कहा है। विश्व के अनेक चिकित्सकों ने भी मांसाहार को मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक बताया है। मांस, अण्डे, शराब, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि मादक द्रव्यों को शरीर मन बुद्धि को दूषित करने वाला पदार्थ माना है। ऐसे व्यक्ति कभी भी ईश्वर की कृपा के पात्र नहीं बन सकते। नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और अपनी संतान व समाज को भी दूषित करते हैं। लंदन की मस्जिद के हमाम अल हाकीज तशीर महमद मसरी ली ने धर्म के नाम पर पशुओं की कुर्बानी देने को अयोग्य कहा है। वेद, बाईबल, कुरान, गुरू ग्रन्थ साहिब अनेक धर्म ग्रन्थों ने मांस, अण्डे, शराब की मनाही की है।

5. आर्ष पाठ विधि से जितनी विद्या बीस या इक्कीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य किसी प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती। आर्ष पाठ विधि में सर्वप्रथम स्थान धर्म का है। असलिए अष्टद्धायी व्याकरण, महाभाष्य, वेद–वेदांग, उपांग के अध्ययन के पश्चात् अर्थकारी विद्या उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वेद, अर्थवेद) के पठन–पाठन का विधान किया गया है। ब्रह्मचर्य एवं सदाचार आर्ष पाठ विधि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जबकि स्कूल–कॉलेजों की अनार्ष शिक्षा प्रणाली का सबसे भयंकर दोष है ब्रह्मचर्य एवं सदाचार का अभाव। अश्लील ग्रन्थों का पठन–पाठन और सह–शिक्षा प्रज्जवलित अग्नि में घी का कार्य करते हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति से पढ़े हुए व्यक्ति प्रायः भारतीय संस्कृति, सभ्यता की हंसी उड़ाते हैं, पश्चिम का अन्धानुकरण करते है, रिश्वतखोरी, मिलावट, भ्रष्टाचार आदि अनैतिक जनविरोधी कार्यों में लिप्त रहते हैं।

6. आपस की फूट से कौरव, पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया। सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, नीच के मार्ग में आर्य लोग (भारतवासी) अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करें कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए।

भारत के महान दानी घनश्याम दास बिरला का उपदेश

देश के प्रसिद्ध उद्योगपति, कर्मयोगी एवं देशभक्ति स्वर्गीय घनश्याम दास बिड़ला ने लगभग 80 वर्ष पूर्व अपने पुत्र श्री वसंत कुमार बिड़ला को एक अत्यंत मार्मिक पत्र लिखा था, जो आज भी प्रासंगिक है और देश के बड़े–बड़े उद्योगपतियों एवं नौकरशाहों के लिये प्रेरणास्रोत है।

चिरंजीव वसंत,

दीपावली संवत् 1991

यह जो लिखता हूँ, उसे बड़े होकर और बूढ़े होकर भी पढ़ना। अपने अनुभव की बात करता हूँ। संसार में मनुष्य जन्म दुर्लभ है, यह सच बात है और मनुष्य जन्म पाकर जिसने शरीर का दुरुपयोग किया, वह पशु है। तुम्हारे पास धन है, तंदरुस्ती है, अच्छे साधन हैं – उनका सेवा के लिये उपयोग किया, तब तो साधन सफल हें अन्यथा वे शैतान के औजार हैं। तुम इतनी बातों का ध्यान रखना। धन का मौज–शौक में कभी उपयोग न करना। धन सदा रहेगा भी नहीं, इसलिये जितने दिन पास में है, उसका उपयोग सेवा के लिये करो। अपने ऊपर कम से कम खर्च करो, बाकी दुखियों का दुःख दूर करने में व्यय करो। धन शक्ति है। इस शक्ति के नशे में किसी के साथ अन्याय हो जाना संभव है, इसका ध्यान रखो। अपनी संतान के लिये यही उपदेश छोड़कर जाओ। यदि बच्चे ऐश–आराम वाले होंगे तो पाप करेंगे और हमारे व्यापार को चौपट करेंगे। ऐसे नालायकों को धन कभी न देना। उनके हाथ में जाये, इससे पहले ही गरीबों में बाँट देना। तुम यही समझना कि तुम इस धन के ट्रस्टी हो। तुम्हारा धन जनता की धरोहर है। तुम उसे अपने स्वार्थ के लिये उपयोग नहीं कर सकते। भगवान को कभी न भूलना। वह अच्छी बुद्धि देता है। इन्द्रियों पर काबू रखना, वर्ना ये तुम्हें डुबा देंगी। नित्य नियम से व्यायाम करना। भोजन को दवा समझ कर खाना। इसे स्वाद के वश होकर मत खाते रहना।

घनश्याम दास बिड़ला

धन की गति

धन की शास्त्रों में 3 गतियाँ बताई गई हैं। पहली दान, दूसरी भोग एवं तीसरी नाश। धन का अगर आवश्यकतानुसार भोग करेंगे तो वह कभी दुःखदायी नहीं होगा एवं आवश्यकता से अधिक धन को दान में देकर जनकल्याण में व्यय करेंगे तो वह सुखदायी होगा और अगर ऐसा नहीं किया तो वही धन आपका नाश कर देगा, क्योंकि वह धन आपको गलत रास्ते पर ले जायेगा। यही कारण है कि अनेक धनी लोगों की संतान नशा, व्यभिचार आदि में लिप्त होकर अपने जीवन को नष्ट कर देती है।

वेद में व्यक्ति को धनी होने के साथ–साथ विद्वान् होने अथवा विद्वान् का सत्संग करने का भी सन्देश है। ऋग्वेद के मंडल 1 अध्याय 15 में एक मंत्र है, जिसका आशय है कि विद्वान् लोग अपनी धार्मिकता और सदाचार से न केवल अपने, अपितु धनी के धन आदि पदार्थों और आचरण की रक्षा करते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि विद्या से सभी प्रकार की सम्पदा की रक्षा होती है। इसलिये यह सभी मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे विद्या के ग्रहण और प्रचार–प्रसार में अवश्य भागी बनें, जिससे न केवल सभी मनुष्य विद्वान् होकर धार्मिक बनें अपितु सभी की रक्षा हो सके।

आज लोग केवल धन और संसाधन प्राप्ति के पीछे भाग रहे हैं। इस भाग–दौड़ में वे ज्यादा से ज्यादा धन कमाने की इच्छा में अधार्मिक एवं भ्रष्ट आचरण भी करने लगे हैं। धार्मिक सज्जन केवल पवित्र धन की इच्छा रखता है। ऐसा धन ही जीवन में सुख देने वाला है। विद्या व्यक्ति को निर्दयी, भ्रष्टाचारी, पापी, चोर आदि बनने से बचाती है। इसलिये केवल धन की ही इच्छा न करें अपितु विद्या प्राप्ति की भी चेष्टा रखें। वेद कभी भी निर्धन रहने का सन्देश नहीं देते अपितु सदा पवित्र धन की कामना करने का आदेश देते हैं।

डॉ. विवेक आर्य

सद्विचार

सद्विचार

मोह–बन्धन का परिवार वाला घेरा तोड़कर वृद्धजनों को शेष बचा जीवन समाज सेवा में लगाना चाहिये।

संस्मरण

अधिकतम वृद्धावस्था आने पर मनुष्य का अपने सगे–सम्बंधियों के प्रति मोह अन्त तक नहीं छूटता है। इसके लिये सबसे बड़ी वैतरणी जो पार करनी पड़ती है, वह है मोह–माया की।

देवर्षि नारद को परिभ्रमण काल में एक वयोवृद्ध धनवान मिला। पूजा बहुत करता था, भक्तजन लगता था। उसकी ढलती आयु को देखकर नारद जी बोले – "परिवार समर्थ हो गया, अब घर से निकल कर वानप्रस्थ लेना चाहिये और लोक सेवा में लगना चाहिये।" बात धनवान के गले न उतरी। उसने कहा – "अभी तो परिवार को और अधिक सम्पन्न बनाना है। फिर कभी समय होगा, तो चलेंगे।" उसकी बात सुनकर नारद जी चले गये।

बहुत वर्षों बाद नारद जी उधर से फिर निकले। धनी व्यक्ति की याद गयी। उसके घर पहुंचे, तो मालूम हुआ, कुछ वर्ष पहले वे चल बसे। नारद जी ने दिव्य दृष्टि से देखा, तो प्रतीत हुआ कि वह मर कर बैल बन गया है और हल में चलता है। समीप जाकर नारद जी ने उसे पूर्वजन्म की बात याद दिलायी और कहा – "अभी भी समय है, हमारे साथ चलो।" बैल को पूर्वजन्म याद हो आया। फिर भी उसने अपने गले में बंधी घंटियों को बजाते हुए सिर हिलाया और कहा – "परिवार को कमाई करके खिलाता हूँ। मेरे चल पड़ने से इन लोगों को कठिनाई होगी।" नारद जी चले गये।

कई वर्षों बाद फिर नारद जी का आना हुआ। बैल का समाचार पूछने गये तो ज्ञात हुआ कि वह भी मर गया। अब वह कुत्ता बना बैठा था। लेकिन था उसी घर में। नारद जी बोले –"कुत्ते की स्थिति में पड़े रहने से क्या लाभ? चलो विश्व कल्याण का कुछ काम करें।" कुत्ता सहमत नहीं हुआ। उसने कहा – "विश्व कल्याण से क्या फायदा? परिवार कल्याण ही बहुत है। मैं चल पड़ूँ तो चोरों से घर की रखवाली कौन करेगा?" उसकी बात सुनकर नारद जी चले गये।

फिर तीसरी बार उसी प्रकार लौटना हुआ और नारद जी ने इस बार भी पहले की तरह पूछताछ की। मालूम पड़ा, कुत्ता मर गया। देखा तो वह साँप बना वहीं एक बिल में सिर चमका रहा था। नारद जी उसके समीप पहुंचे ओर बोले – "ऐसी दुर्गति से क्या लाभ? अब तो तुमसे इन लोगों की कोई सहायता भी न बन पड़ती होगी? चलो न!" सर्प ने असहमति सूचक अपने फन को हिलाया और कहा – "घर में चूहे बहुत हैं। इन्हें निगलने और डराने का काम क्या कम है? परिवार का मोह कैसे छोडूं?" नारद जी इस बार भी चले गये।

एक दिन साँप बिल से निकला ही था कि घरवालों ने उसकी डंडे से खबर ली और सिर कुचल दिया। ऐसी दुर्दशा न हो, इसलिये अधेड़जनों को आत्मीयजनों के प्रति अनावश्यक अतिशय आसक्ति छोड़कर स्वयं सत्प्रवृत्ति संवर्धन हेतु समाजरूपी रणक्षेत्र मे सहर्ष उतर जाना चाहिये।

सार

पका हुआ फल डाली छोड़कर अन्यों के काम आने के लिये चला जाता है।

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बर्स बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर/फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है ।

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स/गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फ्रन्ट फोर्कस
- गैस स्प्रिंगस/विन्डो बैलेन्सर्स

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2021-2023 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

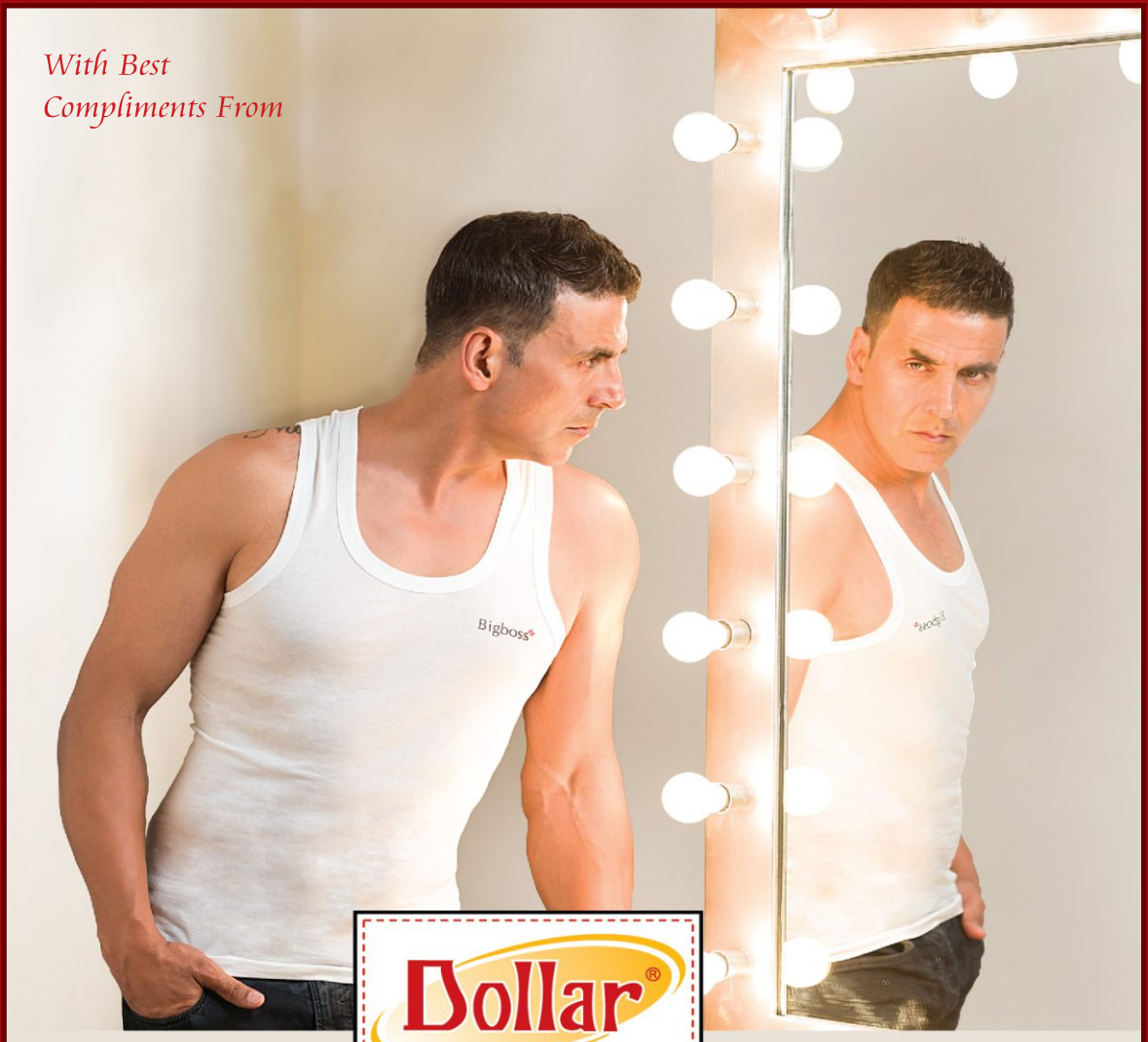

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।

संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री